दीपिका
चन्द्रापीड़ कथा
इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

(इन्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए)

समास विग्रह सन्धि-विच्छेद, हिन्दी व संस्कृत शब्दार्थ, संक्षिप्त टिप्पणियां, सप्रसङ्ग भावार्थ आदि विद्यार्थियों के लिये आवश्यक सम्पूर्ण पठन-सामग्री से परिपूर्ण

लेखिका :

स्वर्ण कान्ता

एम० ए०, साहित्यरत्न

(स्वर्ण पदक प्राप्त)

प्रकाशक :

गोयल बुक डिपो, सहारनपुर

[मूल्य ५.२५ पैसे

चन्द्रापीड-कथा

पृष्ठ १ आसीत पुरा········अतिचिरमुवास ।

शब्दार्थ- पुरा— प्राचीन काल में । विदिशाभिधाना—विदिशा नामक । असकृत अनेक बार । आलोचित नीतिशास्त्रै— नीतिशास्त्रों का विचार करने वाले । असकृत आलोचितानि नीतिशास्त्राणि यै. तै (बहुव्रीहि समास) । अमात्यैः—मन्त्रियों से । परिवृत:—घिरा हुआ । समानवयो विद्यालंकारैः— समान आयु विद्या तथा आभूषण वाले । रमभाण:– आनन्दित होता हुआ । प्रथम वयसि—युवावस्था में । वर्तमान.—रहता हुआ । वनितासुखपरागमुख (वनितायाः सुखम् तेन पराङ्मुख.) स्त्री सुख से विमुख । सुखम्—सुख पूर्वक । अति चिरम्—बहुत समय तक । उवास—निवास किया ।

अर्थ—प्राचीन काल में शूद्रक नाम का राजा था उसकी विदिशा नाम की राजधानी थी । उसने उसमें सदा नीति शास्त्र का विचार करने वाले तथा स्वच्छ मन वाले मंत्रियों से युक्त समान आयु विद्या तथा अलंकरणों वाले राजकुमारों के साथ आनन्दित होता हुआ युवावस्था में स्थित होने पर भी स्त्री सुख से विमुख होकर सुख पूर्वक बहुत समय तक निवास किया ।

एकदा तम ······ इमाम पपाट ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—एकदा–एक बार । आस्थान मण्डप गतम्–सभा मन्डप में स्थित । दक्षिणायकात्—दक्षिण देश से । आगता—आई हुई । कचित—कोई । पंजरस्थम् (पंजरे स्थितम् तत्पु० समास)–पिंजरे में स्थित । आदाय—लेकर । (आ पूर्वक दा धातु के क्त्वा (ल्यप) प्रत्यय का रूप है) । सपुपत्सृत्य—समीप जाकर । विदित सकल शास्त्रार्थः (विदितः सकल शास्त्राणाम् अर्थः येन सः बहु० समास) सभी शास्त्रों के अर्थ को जानने वाला । सकलभूतल रत्न भूतम् (सकलस्त भूतलस्य रत्नभूतम् तत्पु० समास) सम्पूर्ण पृथ्वी पर रत्न जैसा । आत्मीय:—अपना । इति । उक्त्वा—ऐसा कह कर ।

निधाय—रख कर। अपससार—निकल गयो। अपसृतायाम्—चले जाने पर। विहंगराजः—(विहंगानाम् राजा तत्पु० समास) पक्षियों का राजा। भूत्वा—होकर। (भू धातु क्त्वा)। गिरा: वाणी से। कृत जयशब्द—जय शब्द करता हुआ। उद्दिश्य—सम्बोधन करके। पपाठ पढ़ा (पठ धातु लिट लकार)।

अर्थ—एक बार उनके सभा मण्डप में बैठे हुये दक्षिण देश से आयी हुई कोई चाण्डाल कन्या पिंजरे में बन्द तोते को लेकर और समीप जाकर बोली—महाराज! सभी शास्त्रों के अर्थ को जानने वाला राजनीति में कुशल, पुराण इतिहास आदि कथाओं में निपुण सम्पूर्ण भूतकाल में रत्न जैसे इस वशम्पायन नामक तोते को स्वीकार कीजिये। ऐसा कहकर पिंजरे में बन्द तोते को सामने रखकर वह चली गई। उसके चले जाने पर उस पक्षियों के राजा तोते ने राजा की ओर मुख करके स्पष्ट वाणी में जय शब्द का उच्चारण करता हुआ राजा को सम्बोधित करके इस आद्रा शब्द में निबद्ध श्लोक को पढ़ा—

स्तन युगम् ········ रिपुस्त्रीणाम्।

शब्दार्थ—भवतार्थ—आपके। रिपुस्त्रीणाम् (रिपूणांस्त्रियः तेषाम् षष्ठी तत्पुरुष) शत्रुओं की स्त्रियों का। हृदय शोकाग्नेः (हृदस्य शोकाग्निः तस्य षष्ठी तत्पु० समास) हृदय की शोक रूपी अग्नि का। समीपतर वर्ति अधिक समीप रहने वाला। अश्रुस्नातस् (अश्रूभिः स्नातम् तृतीया तत्पुरुष समास) आसुओं से स्नान किया हुआ। विमुक्ताहारम (विमुक्तः हारः मस्मात् तत् बहु०) हार से रहित। अथवा विमुक्तः हारः येन तत्) जिसने भोजन त्याग दिया है। चरित-आचरण करता है।

अर्थ—आपके शत्रुओं की स्त्रियों के दोनों स्तन जो हृदय में उत्पन्न शोक रूपी अग्नि के अधिक समीप रहते हैं तथा जिन्होंने हार को धारण करना त्याग दिया है तथा जो सदा आंसुओं से भीगे रहते हैं ऐसे प्रतीत होते है मानों उन्होंने व्रत सा धारण कर रखा है।

राजा तु ताम् ······· कथमागमनमिति।

शब्दार्थ—तथा आकर्ण्य—संजात विस्मयः (संजातः विस्मयः यस्य सः

बहु० समास) चकित । आदितः प्रभृतिः—आदि से आरम्भ से । का त्स्न्येन—विस्तार पूर्वक । आत्मनः—अपना । परिचयः—ज्ञान । कियत्—कितनी । वयः—आयु । पंजरवद्ध—पिंजरे में बन्धना । इह—यहां । वा—अथवा ।

अर्थ—राजा ने उसको सुनकर चकित होते हुए उसको इस प्रकार कहा—आप आदि से विस्तार पूर्वक अपना समाचार बताइये । आपका जन्म किस देश में हुआ ? आपकी कौन माता हैं, कौन पिता हैं तथा शास्त्रों का ज्ञान कैसे हुआ, कितनी आयु है कैसे पिंजरे में बन्द हुए, कैसे चाण्डाल के हाथ में पड़े अथवा यहां कैसे आये ?

पृष्ठ २—एवं सबहुमानम्········आकर्ण्यताम् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सबहुमानम्—बहुत सम्मान के साथ । अवनि पतिना (अवनेः पतिः तेन षष्ठी तत्पु० समास) राजा के द्वारा । ध्यात्वा—ध्यान करके । महती बड़ी । कौतुकम्—आश्चर्य । आकर्ण्यताम्—सुनिये ।

अर्थ—इस प्रकार राजा के द्वारा बहुत सम्मान पूर्वक पूछे गये वैशम्पायन ने क्षण भर का ध्यान करके सम्मान के साथ कहा—महाराज ! यह कथा बहुत बड़ी है फिर भी यदि आश्चर्य है तो सुनिये ।

अस्ति मध्यदेश ······ मप्संवर्धनपरः अभवत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—मध्यदेशालंकारभूता (मध्यदेशस्य अलंकारभूतः षष्ठी तत्पु०) मध्य प्रदेश का अलंकार जैसा । मेखला इव—मेखला जैसा । विन्ध्यावटी—विन्ध्य नाम का वन । अन्तः पाति—बीच में स्थित । सरिता—नदी से । परिगतम्—स्थित । न+अतिदूरे—समीप । अभिधानस्य-नाम का । पद्मसरसः—कमल वाले तालाव के । जीर्णः—पुराना । शाखाग्रेषु (शाखानाम् अग्रेषु षष्ठी तत्पु०) शाखाओं के आगे । कोठर+उदरेषु—खोखल के पेट में । (कोटरानाम् उदरेषु षष्ठी तत्पु०) विरचित-कुलायानि (विरचितानि कुलायानि यैः तानि बहु०) घोंसला बनाये हुये । नानादेश समागतानि (नानादेशैः समागतानि तृतीया तत्पु०)—अनेक देशों से आये हुये । शुक शकुनि कुलानि (शुकश्च शकुनिश्च तयोः कुलानि षष्ठी तत्पु०) तोते और पक्षियों के कुल । प्रतिवसन्तिस्म—निवास करते थे । जीर्णे कोटरे—पुराने कोटर में । जायया सह—पत्नी के साथ निवसन्—रहते हुये । पश्चिमे वयसि—अन्तिम

आयु में, बुढ़ापे में। वर्तमानस्य—रहते हुए। अहम्+एवं+एकः—मैं ही अकेला। सूनुः—पुत्र। अति प्रबलया—बहुत तीव्र। मम+एव—मेरा ही। जायमानस्य—उत्पन्न होते हुए। प्रसववेदनया (प्रसवस्य वेदना तथा षष्ठी तत्पु०) प्रसव की वेदना से। अगमत्—चली गई। सुतस्नेहात् सुतस्य स्नेहः तस्मात् षष्ठी तत्पु०) पुत्र स्नेह से। अभिमतजाया विनाशशोकम् (अभिमता या जाया अभिमतजाया तस्याः विनाशस्य शोकम् षष्ठी तत्पु०) प्रिय पत्नी की मृत्यु से उत्पन्न शोक को। अन्तः निगूह्य—हृदय में छिपा कर। मत्संवर्धनपर—मेरे पालन पोषण में संलग्न।

अर्थ—वैशम्पायन नामक तोता अपना वृत्तान्त बतलाता हुआ कहता है। कि मध्यप्रदेश की शोभा बढ़ाने वाला तथा पृथ्वी की मेखला के समान विन्ध्याचल नामक वन है। उसमें दण्डकवन के बीच में गोदावरी नदी के तट पर एक आश्रम था। उसके समीप ही पम्पा नामक कमल के तालाब के पश्चिमी तट पर एक बहुत बड़ा पुराना शालमली का वृक्ष है उसकी शाखाओं के ऊपर पेड़ की खोखल में अनेक देशों से आये हुए तोते और पक्षियों के कुल घोंसला बना कर निवास करते थे वहां एक पुराने कोटर में पत्नी के साथ निवास करने वाले वृद्धावस्था में स्थित पिता का मैं ही अकेला पुत्र था। मेरे जन्म के समय अति प्रबल प्रसव की पीड़ा से मेरी माता परलोक सिधार गई। मेरे पिता पुत्र स्नेह के कारण अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु के शोक को हृदय में छिपाकर मेरे पालन पोषण में तत्पर हो गये।

पृष्ठ २-३—एकदा तु प्रभाते·········सेनापतिमपश्यत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सहसा+एव (वृद्धि सन्धि) अचानक ही। मृगया कोलाहल ध्वनिः (मृगयाः कोलाहलश्च तस्य ध्वनिम् षष्ठी तत्पु०) शिकार के कोलाहल की ध्वनि। उदचलत्—उठी। आकर्ण्य—सुनकर। समीपवर्तिनः (समीप वर्तते इति समीपवर्तिः तस्य) समीप स्थित। पक्षपुटाभ्यन्तरम् (पक्षपुटयोः अभ्यन्तरम् षष्ठी तत्पु०) पखों के बीच में। अविशम्—घुस गया। शैशवात्—बचपन के कारण। संजात कुतूहलः (संजातः कुतुहलः यस्य सः बहु० समास) जिसे कुतूहल हो गया हो। पितुः+उत्संगात्—पिता की गोद से। ईषत्—थोड़ा। निष्क्रम्य—निकल कर। एव—ही। शिरोधारम्—

गर्दन। प्रसार्य—फैला कर। शाखिणवम्—डाली। अभिमुखम्—सामने। आपतत्–आते हुये। अद्राक्षम् देखा। अजानुलम्बेन—घुटने तक लम्बी। उपशोभितम्—सुशोभित। श्वभि—कुत्तों के द्वारा। अनुगम्यमानम्—अनुगमन किया जाने वाला। शवरु—एक जंगली जाति, भील।

अर्थ—एक बार प्रात:काल अचानक उस बड़े वन में शिकार के कोलाहल की ध्वनि उठी। मैं उसको सुनकर समीप स्थित पिता के पखों में घुस गया। इसके पश्चात् बचपन के कारण यह क्या हुआ इस बात को जानने के लिये उत्सुक सा मैं पिता की गोद से थोड़ा निकलकर कोटर में स्थित ही गर्दन फैलाकर उस दिशा की ओर दृष्टि डालने लगा। तब मैंने वन के बीच से सामने आते हुए अत्यन्त भयानक शबर सेना (भीलों की सेना) को देखा। उसके मध्य में युवावस्था में स्थित घुटने तक लम्बी भूजाओं से सुशोभित तथा अनेक वर्णों वाले कुत्तों से अनुगमन किये जाने वाले मातग नाम वाले शवर सेनापति को देखा।

सोऽयम् ·········· व्यलम्बत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अटवीभ्रमण समुद्भवम् (अटव्याम् भ्रमणाम् अटवीभ्रमणम्—तेन समुद्भवम् तृतीया तत्पु०—वन में भ्रमण करने से उत्पन्न श्रमम्—थकन। अपनिनीषु:—दूर करने का इच्छुक। आगत्य—आकर। अध:—नीचे। उपाविशत्—बैठ गया। अति+अच्छम् (यण सन्धि) बहुत स्वच्छ। कमलिनी पत्र पुटेन (कमलिन्या: पत्र पुटेन षष्ठी तत्पु०) कमलिनी के पत्ते के दोने में। आनीय—लाकर। आपीय—पीकर। धौता: पंका: यस्या: ता बहुव्रीहि) जिसके कीचड़ धो दिये गये हैं। अदशत्—काटकर खाया। अपागतश्रम: (अपगत: श्रम: यस्य स: बहुव्रीहि) जिसकी थकान दूर हो गयी। सकलेन—सम्पूर्ण। शनै: शनै:—धीरे धीरे। अभिमतम्—इच्छित। दिगन्तरम्—दिशा। अयासीत्—चला गया। एकतम: (तप् प्रत्यय) बहुतों में से एक। जरत्+शवर:—बूढ़ा भील। दिपितार्थी—मांस का इच्छुक। तस्मिन्—एक उसी व्यलम्बत्—ठहर गया।

अर्थ—वह वन में भ्रमण करने से होने वाली थकान को दूर करने की

इच्छा से आकर उसी शाल्मली वृक्ष के नीचे छाया में बैठ गया। इसके पश्चात् उस तालाब के कमलिनी के पत्ते के दोने में अत्यन्त स्वच्छ जल लाकर और पीकर तथा कीचड़ धुले हुए स्वच्छ तथा निर्मल कमल नाल को खाया। थकान दूर हो जाने पर उठकर उस सम्पूर्ण भील सेना के साथ धीरे २ इच्छित दिशा की ओर चला गया। उनमें से एक बूढ़ा भील जो मांस खाने का इच्छुक था उसी पेड़ के नीचे घड़ी भर रुक गया।

अन्तरिते.........अवष्टम्य तस्थौ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण---अन्तरिते---दृष्टि से ओझल होना। जीर्ण शबर---बूढ़ा भील। पिवन् इव - पीता हुआ जैसा। आयूंषि---आयु को। वनस्पतिम्---पेड़ को। सुचिरम् बहुत देर तक। आमूलात्---जड़ से लेकर। पादपम् - वृक्ष पर। आरुह्य---चढ़कर। शाखान्तरेभ्यः---शाखाओं के बीच में। शुकशावकान् (शुकानां शावकान षष्ठी तत्पुरुष) तोते के बच्चों को। गृहीत्वा पकड़कर। अपगतासून्---प्राण हीन। क्षितौ---पृथ्वी पर। अपातयत्---गिराया। प्राण हरम्---प्राणों को हरण करने वाला। उपप्लवम्---उपद्रव। आलोक्य ---देखकर। उद्भ्रान्तारकाम्---चचल पुतलियों वाली। दृशम्---दृष्टि। इतस्ततः इधर उधर। दिक्षु---दिशाओं में। क्षिपन् (क्षिप् धातु शतृ प्रत्यय) डालता हुआ। स्नेह परवश (स्नेहस्य परवशः षष्ठी तत्पु०) स्नेह के वश में। मद्रक्षणा-कुलः---मेरी रक्षा में व्याकुल। पक्षपुटेन---पंखों से। आच्छाद्य---ढक कर। क्रोड़ विभागेन---गोद से। अवष्टम्य---चिपटा कर। तस्थौ---ठहर गया।

अर्थ---शबर सेनापति के दृष्टि से ओझल हो जाने पर उस बूढ़े भील ने उस पेड़ को जड़ से ऊपर तक इस प्रकार देखा जैस वह हमारी आयु को पी रहा हो। इसके पश्चात् वह उस पेड़ पर चढ़कर शाखाओं के बीच से तथा कोटर के बीच से तोते के बच्चों को पकड़कर और मार कर धरती पर गिराने लगा। मेरे पिता ने उस महान् प्राणों को हरण करने वाले उपद्रव को देखकर मृत्यु के भय से चंचल पुतलियों वाली दृष्टि को इधर उधर घुमाते हुए स्नेह के वशीभूत तथा मेरी रक्षा के लिये व्याकुल होकर मुझे अपने तंखों से ढक कर तथा गोद में चिपका कर ठहरे रहें।

पृष्ठ ४ अ.......नाथाः।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—असौ+अपि—वह भी । भुजंगभोग भीषणम् सांप के फण के समान भयंकर । वामबाहुम्—बांयी भुजा को । प्रसार्य--फैला कर । आकृष्य—खींच कर । अपगतासुम् (अपगताः असवः गस्य तम् बहुव्रीहि) —प्राण रहित । स्वल्पत्वात्—बहुत छोटा होने के कारण । भयसम्पिण्डित्—+अगंत्वात्—भय से संकुचित अंग होने के कारण । सावशेषत्वात्—शेष होने के कारण । आयुषः—आयु का । पक्षपुटाम्यण्तर गतम्—पंखों के बीच में छिपे हुए । न—अलक्षयत्—नहीं देखा । अपरतम्—मरे हुये । तातम्—पिता को । अवनितले—पृथ्वी पर । शिथिल शिरोधरम्(शिथिलम् शिरोधरम्यस्य तम् बहुव्रीहि)अमुंचत्—डाल दिया । तच्चरणाभ्यन्तरे—उनके चरणों के बीच में निलीन.— छिपा हुआ । अपतम्—गिर गया । अवशिष्ट--पुण्य तथा (अवशिष्टम् यत् पुण्यम् अवशिष्ट पुण्यम् तस्य भाव तथा कर्मधारय समास) पुण्य शेष होने के कारण । महतः—बड़ा । शुष्क पत्रराशेः—सुखे पत्तो के ढेर के ऊपर । उपरि—ऊपर । अङ्गानि—अङ्ग । मेरे न+अशीर्यन्त—नहीं टूटे ।

अर्थ—उस पापी ने भी क्रमशः शाखाओं के बीच में चलते हुए कोटर के द्वार पर आकर सांप के फण के समान भयंकर अपनी बांयी भुजा फैला कर पिता जी को खींच कर मार डाला और मुझे बहुत मोटा होने के कारण भय से सिकुड़े अङ्ग होने के कारण तथा आयु के शेष होने के कारण नहीं देखा । उसने मरे हुए मेरे पिता को जिनकी गर्दन लटकी हुई थी नीचे मुख करके गिरा दिया । मैं भी उनके पैरों के बीच में छिपा हुआ उन्हीं के साथ गिर पड़ा । मैंने पुण्य शेष रहने के कारण अपने को बहुत बड़े सूखे पत्तों के ढेर पर गिरा हुआ देखा । इससे मेरे अंग नहीं टूटे ।

यावदसो ....उपागमत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—न+अवतरित—नहीं उतरता है । तावत्—तब तक । उपरतम्—मरे हुए । उत्सृज्य—छोड़ कर । न+अतिदूरवर्तिनः—समीप स्थित । तमाल विटपिनः—तमाल के पेड़ के । मूलदेशम्—जड़ में । अविशम्—घुस गया । तदानीम्—उस समय । अवतीर्य—उतर कर । क्षिति

तल विप्र कीर्णान् (क्षितितले विप्र कीर्णान् अधिकरण तत्पुरु०)—पृथ्वी अंगु
दिखरे हुए । संहृत्य—जमा करके । सुक शिशून—तोते के बच्चों को । एक
तापाश संयतान्—एक लता के पाश में बन्धे हुए । सेनापति गतेन + एक
सेनापति के द्वारा गये हुये । वर्त्मना—मार्ग से । आयासित शरीरम्—अ
शरीर वाला । पिपासा—प्यास । परवशम् अकरोत—व्याकुल कर दिया
सरसः—तालाब के । तत्तनय (तस्य तनयः षष्ठी तत्पु०) उनका पुत्र
सिस्नासुः—स्नान करने का इच्छुक । उपागमत समीप आया ।

अर्थ—जब तक वह उस पेड़ की चोटी पर नहीं उतरा तब तक मरे कुसु
पिता को छोड़कर समीप स्थित तमाल वृक्ष के मूल प्रदेश में घुस गया । वाले
वह उतर कर पृथ्वी पर बिखरे तोतें के बच्चों को एकत्रित करके तथा ए
लता के जाल में उनको बान्ध कर सेनापति द्वारा गये हुए मार्ग से उसी दिश
की ओर चला गया । बहुत दूर से गिरने के कारण अशान्त शरीर वाले मुम
को बहुत प्यास लगी । उस तालाब के समीप स्थित तपोवन में जाबालि नव
के बहुत बड़े मुनि रहते थे उनका हारित नामक पुत्र उसी कमल वाले ताल
में स्नान करने की इच्छा से आया ।

पृष्ठ ५—स मां तदवस्थम् ····· अगच्छत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—तदवस्थम्—उस अवस्था में । आलोक्य—
कर । समुपजातदयः (समुपजाता दया यस्यः सः (बहुव्रीहि)—दया युक्त होकर
उपसृत्य—जाकर । आनीय—लाकर । उत्तानितमुखम् (उत्तानित मुख यस्य
बहुव्रीहि)—ऊपर मुख किये हुए । अंगुल्या—अंगुली से । कतिचित्—कुछ
सलिल बिन्दून—पानी की बून्दे । अपाययत्—पिलाया । अम्भ क्षोद कृत से
—पानी का छींटा देकर । समुपजात नवीन प्राणम्—जिसे जीवन प्रा
हो गया है । उपतट प्ररूढ़स्य—किनारे पर उगे हुए । जल शिशिरायाम्
पानी के समान शीतल । निधाय—रख कर । अभिषेकावसाने (अभिषेक
अवसाने षष्ठी तत्पु०—स्नान के पश्चात् । सवित्रे—सूर्य को । तत्वा + अ
—अर्घ्य देकर । उदतिष्ठत्—उठा ।

अर्थ—उसने मुझे वैसी दशा में देखकर दया उत्पन्न हो जाने के का
समीप जाकर, तालाब के किनारे लाकर, स्वयं मेरा मुख उपर की ओर क

अंगुली से कुछ जल की बूंदे पिलायी । जल के छींटे से नवीन जीवन प्राप्त किए हुये मुझे किनारे पर उगे हुए नलिनी के पत्ते की जल के समान शीतल छाया में रखकर यथायोग्य स्नान विधि करने लगा । स्नान के पश्चात भगवान सूर्य को अर्घ्य देकर उठा तथा धुले हुये स्वच्छ बल्कल को लेकर और मुझे उठाकर तपोवन की ओर चला गया ।

अनति दूरमिव............कुशासने समुपाविशत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सदासन्निहित कुसुम फलैः (सदा सन्निहितानि कुसुमानि फलानि च यस्मिन् ततः) सदा समीप स्थित फल और फूल वाले काननैः—वनों से । उपगूढ़म्:—घिरे हुए । वेदाध्यनमुखर बटु जनम् (वेदाध्ययने मुखराः बटुजनाः यस्मिन् तम् बहुव्रीहि)—वेदाध्ययन में मुखर ब्रह्मचारियों वाले । उपचर्यमाणातिथिवर्गम् (उपचर्यमाणः अतिति तर्गः यस्मिन् म् वहुव्रीहि) जहां अतिथिवर्ग का सत्कार हो रहा था । व्याख्यायमान—यज्ञ विवम् (यज्ञस्य विधि यज्ञविधिः व्याख्यायमान यज्ञविधिा यस्मिन् यम्)—जहां यज्ञ की विधि बतायी जा रही थी । आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्—जहां धर्म शास्त्रों का विचार हो रहा था । वाच्यमान विविय पुस्तकम्—जहां अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थीं । एवं विधस्य—इस प्रकार के । रक्त+अशोकतरोः—लाल अशोक वृक्ष के । उपविष्टम्—वैठे हुए । समन्नात्—चारों ओर से । महनीयैः बड़े बड़े परिवृतम्—घिरे हुए । अयामिभिः—लम्बी । उपशोभितम्—सुशोभित । आनाभि लम्बिकूर्च कलायन्—(नाभि अभिव्याप्य लम्बते कूर्च कलापः यस्य तम् बहुव्रीहि) नाभि तक लम्बी दाढ़ी वाले । स्थाययित्वा रखकर । उपगृह्य स्पर्श करके । कृताभिवादनः प्रणाम करता हुआ । समुपाविशत--बैठ गया ।

अर्थ कुछ ही दूर जाकर मैंने एक आश्रम को देखा जो सदा समीप स्थित फलों और फूलों वाले वनों से घिरा हुआ था । जहां ब्रह्मचारी वेदाध्ययन में लगे हुये थे । जहां अतिथियों का स्वागत सत्कार हो रहा था, यज्ञ विधि का व्याख्यान हो रहा था, धर्म शास्त्रों का विचार हो रहा था, अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जा रही थी, तथा सम्पुर्ण शास्त्रों के अर्थ का विचार किया जा रहा था । ऐसे उस आश्रम के बीच में लाल अशोक वृक्ष के नीचे छाया में बैठे

हुए चारों ओर बड़े बड़े महर्षि से घिरे हुए, लम्बी जटाओं से सुशो नाभि तक लटकी हुई दाढ़ी वाले भगवान जाबालि को देखा । हारीत उसी अशोक वृक्ष के नीचे छाया में रखकर पिता के चरणों को स्पर्श क प्रणाम करता हुआ कुछ दूर रखे कुशा के आसन पर बैठ गया ।

पृष्ठ ६ आलोक्य तु ···· आनीतः ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—आलोक्य—देखकर । आसादितः– प्राप्त कि आसीतम्–बैठे हुए । अपृच्छन्—पूछा । स्नातुम्—स्नान करने के लि इतः—यहां से । तरुनीडात् (तरोः नीडात् षष्ठी तत्पु०)—पेड़ के घोंसले पतितः—गिरा हुआ । दूर निपतन विह्वल तनुः—दूर से गिरने के का व्याकुल शरीर वाला । तपस्विदुरारोहतया—तपस्वियों द्वारा न चढ़ने य होने के कारण । स्वनीढम् (स्वस्य नीडम् षष्ठी तत्पु०) अपने घोंसले आरोपयितुम्—रखने के लिये । जात दयेन (जातः दया यस्या तेन बहुव्री —जिसे दया उत्पन्न हो गई । आनीतः—लाया ।

अर्थ—मुझे देखकर वे सब मुनि बैठे हुए उस हारित से पूछने लगे कि कहां से प्राप्त हुआ । उसने कहा—यहाँ से स्नान के लिये गये हुए मैंने इ कमलिनी के तालाब के किनारे पेड़ पर के घोंसले से गिरे हुए तथा दूर गिरने के कारण व्याकुल शरीर वाले इसको प्राप्त किया है । तपस्वियों लिए उस पेड़ पर चढ़ना निषिद्ध होने के कारण इसको अपने घोंसले में रखा जा सकता था इसलिये दया उत्पन्न हो जाने के कारण मैं ले आया ।

अयम् इदानीम् ····· स्थास्यति इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—इदानीम्—अब । अप्ररूढ़पक्षतिः (न प्र अप्ररूढ़ः पक्षतिः यस्य सः बहुव्रीहि समास)—जिसके पंख नहीं उगे अक्षमः—असमर्थ । अन्तरिक्षम्—आकाश । उत्पत्पतितुम्—उड़ने के लि कस्मिश्चित्—किसी । उपनीतेन—लाए हुए । नीवार कण निकरेण (नीव णाम् तेषाम निकरेण षष्ठी तत्पु०) —नीवार कणों के समूह से । संवर्धं —बढ़ाया जाता हुआ । धारयतु जीवतम्—जीवन धारण करे । अ

परिपालनम् (अनाथानाम् षष्ठी तत्पु०)—अनाथों का पालन। अस्मत् विधानाम्---हम जैसे मनुष्यों का। उदभिन्न पक्षति—पंख उत्पन्न हो जाने पर गगन सचरण समर्थः—आकाश में उड़ने में समर्थ। यास्यति—जायेगा। रोचिष्यते—अच्छा लगेगा। इह+एव (वृद्धि सन्धि) यहां ही। उपजात परिचयः (उपजातः परिचयः यस्य सः बहु०) परिचय को प्राप्त। स्थास्यति—ठहरेगा।

अर्थ—यह इस समय पंख न उगने के कारण आक में उड़ने में असमर्थ हैं। इसलिए यहीं किसी आश्रम के वृक्ष के कोटर में मुि मारों द्वारा तथा हम लोगों द्वारा लाए हुए नीवार कण के समूह से तथा ों के रस से पाला जाता हुआ जीवन धारण करे। क्योंकि हम लोगों जैसे मनुष्यों का अनाथों का पालन क.ना परम धर्म है। पंख प्रकट हो जाने पर आकाश में उड़ने में समर्थ हो जाने पर इसे जहां अच्छा लगेगा चला जायेगा अथवा परिचय हो जाने के कारण यहां ही रहेगा।

इत्यस्मतसम्वद्धम् ·········यदि यतूहलम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—इति+अस्मत्+सम्वद्धम्—इस प्रकार अपने से सम्बन्धिन। आलापम्—वार्तालाप। आकर्ण्य—सुनकर। अति प्रशान्तया—बहुत शान्त। स्वस्य+एव+अविनस्म—अपनी ही दुष्टता का। अनेन+अनुभूयते—यह भोग रहा है। इति+अवोचत् (यण सन्धि) इस प्रकार बोला। सर्वा+एव (वृद्धि सन्धि)—सभी। तापस परिपत् (तापसानाम् परिषत् पष्ठी तत्पु०)—तपस्वियों की सभा। उपनाथितवती—प्रार्थना किया। आवदेय—बताइये। कीदृशस्य—कैसे। कः+च+अयम—और यह कौन। जन्मान्तरे—दूसरे जन्म में। विहगजामौ (विहंगानाम जाति तस्मिन षष्ठी तत्पु०)—पक्षी जाति से। सम्भवः—जन्म। अभिधानः नाम। अपनय—दूर कीजिए। :—हमारा। अवादीत्—बोला। श्रूयताम्—सुनिये।

अर्थ—इस प्रकार मुझ से सम्बन्धित बातचीत सुनकर भगवान जाबालि ने मुझे बहुत शान्त दृष्टि से देखकर कहा कि यह अपनी ही दुष्टता का फल भोग रहा है। यह सुनकर सारी तपस्वियों की सभा ने उस भगवान जाबालि से प्रार्थना की कि भगवन! बताइये कि यह कैसी दुष्टता का फल भोग रहा

तारापीड राजा पत्नी विलासवती चन्द्रापीड
शुकनाश मन्त्री १४ मनोरमा पत्नी वैशम्पायन

हैं ? यह पूर्व जन्म में कौन था ? पक्षी जाति में इसका जन्म क्यों हुआ ? अथवा इसका क्या नाम हैं ? हमारी उत्सुकता को दूर कीजिए । ऐसा कहे गये महामुनि बोले—यदि कुतूहल है तो सुनो ।

पृष्ठ ७ अस्ति सकल भूवन .... नाम राजासीत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सकल भुवन ललामभूता:—सम्पूर्ण संसार में सुन्दर बनी हुई । विजत अमरलोकद्युति: (विजिता अमरलोकस्य द्युति यथा सा बहुव्रीहि) स्वर्ग की शोभा को जीतने वाली । नलनहुषययाति प्रतिम- (नलश्च नहुषश्च ययातिश्च ने प्रतिम: यस्य स: बहुव्रीहि समास) नल नहुष तथा ययाति के समान । वभूव हुआ । रात्र: राजा का । नीतिशास्त्र प्रयोग कुशल (नीतिशास्त्रस्थ प्रयोगे कुशल य: स: बहुव्रीहि)—नीति शास्त्र के प्रयोग में कुशल । महत्सु+अपि—बड़े बड़े । कार्य संकटेपु (कार्याणाम् संकटेपु षष्ठी तत्पु०)—कार्यों के संकट में । अविषण्णधी: (अविषण्णाधी. यस्य स: बहुव्रीहि —स्थिर बुद्धि वाला । अमात्य—मंत्री ।

अर्थ—अवन्ति में सभी लोकों में सुन्दर तथा अपनी शोभा से स्वर्ग की शोभा को जीतने वाली उज्जैन नाम की नगरी है । उसमें नल नहुष तथा ययाति के समान तारापीड नामक राजा हुआ । उस राजा का शुकनाश नामक मंत्री था जो नीति शास्त्र प्रयोग में कुशल तथा वड़े बड़े संकट पूर्ण कार्यों में स्थिर बुद्धि वाला था ।

स राजा......... सुख न लेभे ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—राजलक्ष्मी लीलोपधानेन (राज: लक्ष्मी राजलक्ष्मी तस्या: लीला तस्या: उपधानम् तेन)—राजलक्ष्मी के लिये तकिया जैसा । वाहुना—भुजा से । सप्तद्वीप वलयाम्—सातों द्वीप जिसकी मेखला है विजित्य—जीतकर । आरोप्य—रखकर । सुस्थिता:—स्थिर शान्त । जवास निवास किया । अनायासेन+एव—सरलता से । प्रज्ञावलेन प्रज्ञाया: बलेन षष्ठी तत्पु०)—बुद्धि बल से । वभार—धारण किया । मंत्री—निवेशित राज्यभार: (मन्त्रिपु निवेशित:—राज्यभार: येन स: बहुव्रीहि)—मन्त्रियों पर राज्यभार डाले हुए । अनुभवन्—अनुभव करते हुए । अपापयत्—व्यतीत किया ।

भूयसा–अत्यधिक । सुतमुखदर्शनम् (सुत मुखस्य दर्शनम् षष्ठी तत्पु०) पुत्र के मुख को देखना । लेभे–प्राप्त किया ।

अर्थ—यह राजा बचपन से ही राज्यलक्ष्मी के विश्राम के लिए तकिया जैसी भुजा से तथा सात द्वीप ही जिसकी मेखला है ऐसी पृथ्वी को जीत कर तथा शुकनास पर राज्य भार डालकर प्रजा को स्थिर और शान्त करके सुख पूर्वक रहा । शुकनास ने भी बड़े राज्य भार को बुद्धिबल से सरलता पूर्वक धारण किया । इस प्रकार मंत्रियों पर राज्य भार डालकर यौवन सुख का अनुभव करते हुए उस राजा ने बहुत समय व्यतीत किया । परन्तु समय बीत जाने पर भी पुत्र के मुख को देखने का सुख प्राप्त नहीं किया ।

तस्य विलासवती······· स्वप्नम् अकथयत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण – महिषी—रानी । महाकालम्–शिव को । अभ्यर्चितुम्— पूजा के लिये । गता— गयी । वाच्यमाने—पढ़ने पर । अपुत्राणाम् – पुत्रहीनों का । श्रुत्वा—सुनकर । नितराम्—अत्यधिक । परितप्य माना— दुखी होती हुई । तत प्रभृति–तब से । देवताराधनेषु (देवतायाः आराधनेषु षष्ठी तत्पु०) – देवताओं की आराधना में । सपर्यासु–पूजा में । सुतराम्— अत्यधिक । बभूव—हुई । गच्छति काले समय बीतने पर । कताचित्—कभी चरमे—अन्तिम । यामिनीयामे—रात के पहर में । शशीनम्—चन्द्रमा को । अद्राक्षीत—देखा । प्रबुद्धः + च + उत्थाय—जाग कर और उठकर । समाहूय —बुला कर ।

अर्थ—उसकी विलासवती नाम की रानी भगवान शिवजी की उपासना के लिये गई । वहां महाभारत के पाठ में उसने 'पुत्रहीनों को शुभ लोक की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा सुनकर अत्यन्त दुखी होती हुई तब से देवताओं की आराधना में ब्राह्मणों की पूजा में गुरुजनों की सेवा के कार्य में अत्याधिक आदर युक्त हो गयी । इस प्रकार समय बीतने पर किसी समय राजा ने रात के अन्तिम पहर में स्वप्न में विलासवती के मुख से सम्पूर्ण कलाओं वाले चन्द्रमा को प्रवेश करते हुए देखा । जागकर और उठकर उसी समय शुकनास को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया ।

पृष्ठ ८—गच समुपजात हर्षं ········ स्वप्ना: इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—समुपजात हर्षः (समुपजातः हर्षं यस्य सः बहुव्रीहि) हर्ष युक्त । प्रति—उवाच—उत्तर दिया । सम्पन्ना:—सफल हुए । सुचिरात् —बहुत दिनों के बाद । कतिपयै:+एव+अहोभिः—कुछ ही दिनों में । असदेहम्—निश्चित । सुतमुख कमसावलोकन सुखम्—पुत्र के कमल जैसे मुख को देखने का सुख । दिव्या कृतिना (दिव्याआकृति यस्य स तेन बहुव्रीहि)-दिव्य आकृति वाले । कनचित्—किसी के द्वारा । विकचम्—विकसित । पुण्डरीकम् —कमल । उत्संगे—गोद में निहितम्—रखा हुआ । अवितथफला—(अवितथम् फलम् येषां से बहुव्रीहि समास)—निश्चित फल वाले, सच्चे । निशवसान समय दृष्टा (निशाया: अवसानम् तस्मिन समये दृष्टा बहुव्रीहि समास) रात्रि समाप्त होने के समय देखे गये ।

अर्थ—उसने प्रसन्न होकर उत्तर दिया महाराज ! बहुत समय पश्चात् हमारी प्रजा की कामना पूर्ण हुई । कुछ ही दिनों में निश्चित् ही आप पुत्र के मुख को देखने का सुख प्राप्त करेंगे । आज मैंने भी स्वप्न में दिव्य आकृति तथा शान्त मूर्ति वाले किसी ब्राह्मण के द्वारा देवी मनोरमा की गोद में विकसित कमल रखते हुए देखा है । प्राय: रात्रि समाप्त होने के समय देखे गये स्वप्न निश्चित् फल देने वाले होते हैं ।

कतिपय दिवसापगमे ········ मुमुदे ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—कतिपयदिवसापगमे-(कतिपयानां अपगमः तेषां षष्ठी तत्पु०)—कुछ दिनों के बीतने पर । देवता प्रसादात् देवतनां प्रसाद षष्ठी तत्पु०) देवताओं की कृपा से । विवेश—प्रवेश किया । उपचीयमान गर्भा (उपचीयमानः गर्भः यस्या सा बहुव्रीहि समास) बढ़ते हुए गर्भ वाली प्रशस्तयां श्रेष्ठ । वेलायाम्—समय में । सकल लोक हृदयानन्द कारिण (सकल लोकानाम् हृदयं आयन्दित करोति यः सः तम् बहुव्रीहि समास)— सम्पूर्ण लोकों के हृदय को आनन्दित करने वाले । असूत—जन्म दिया गया पार्थिवः राजा । मौहूनिक गणोपदिष्ठे (मौहूर्तिक गणैः उपादिष्टे—तृतीया तत्पु०) ज्योतिपियों द्वारा वताये हुए । प्रशस्ते—श्रेष्ठ । शुकनास द्वितीय —शुकनास के साथ । मंगल ········ मंगल

युक्त। द्वारदेशेन—द्वार भाग से। अविच्छिन्नं पठ्यमानं—नारायण नाम। सहस्त्रम् (अविच्छिन्नम् पठ्यमानं—नारायण नाम सहस्त्रम् यत्र तम् बहुव्रीहि)—जहाँ निरन्तर विष्णु के सहस्त्रों नामों का पाठ हो रहा था। सूतिकागृहं—जिस घर में बच्चे का जन्म होता है। प्रविश्य:—प्रवेश करके। प्रसव–परिक्षान पाण्डूमूर्तें (प्रसवेन परिक्षामा पाण्डुश्च मूर्ति यस्या: तस्या: बहुव्रीहि)—प्रसव के कारण दुर्बल तथा पीली आकृति वाली। उत्संगतम् (उत्संगे गतम् सप्तमी तत्पु०)—गोद में स्थित। महापुरुष लक्षणोपेतम् (महान्तश्चासो पुरुषा महापुरुष कर्मधारय तेषां लक्षणानि तैः उपेतम् तृतीया तत्पुरुष)—महापुरुषों के लक्षणों वाले। आत्मजम्—पुत्र को। ददर्श—देखा। विगत्त निमेषेण—पलक। निश्चल पक्ष्मणा:—स्थिर पलकों वाली। चक्षुषा:—दृष्टि से। स्पृहम् (स्पृह्या सहितम् तृतीया तत्पु०)—इच्छा के साथ। ईक्षमाण:—देखते हुए। तनयाननम् (तनयस्य आननम् षष्ठी तत्पु०)—पुत्र के मुख को। मुमुदे—आनन्दित हुआ।

अर्थ—कुछ दिन व्यतीत होने पर देवताओं की कृपा से विलासवती गर्भवती हुई। धीरे-धीरे प्रतिदिन बढ़े हुए गर्भ वाली वह प्रसव का समय पूर्ण होने पर शुभ समय में सम्पूर्ण लोकों के हृदय को आनन्दित करने वाले पुत्र को जन्म दिया इसके पश्चात राजा ने ज्योतिषियों द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त में शुकनास के साथ दो मङ्गल कलसों से सुशोभित द्वार वाले तथा जहां निरन्तर भगवान विष्णु के सहस्त्रनामों का पाठ हो रहा था उस सूतिका गृह में प्रवेश करके प्रसव के कारण दुर्बल तथा पीली आकृति वाली विलासवती की गोद में पड़े हुए महापुरुषों के लक्षणों वाले पुत्र को देखा। अपलक तथा स्थिर बोरानियों वाली दृष्टि से बड़ी स्पृहा के साथ पीता हुआ सा तथा पुत्र के मुख को देखता हुआ अत्यधिक आनन्दित हुआ।

पृष्ठ ६—तस्मिन्नेव समये········चन्द्रापीडस्य।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—ज्येष्ठायाम्—बड़ी। ब्राह्मण्याम्—ब्राह्मणी में। तनय:—पुत्र। जात:—उत्पन्न हुआ। अमृय वृष्टि प्रतिमम्- अमृत वर्षा के समान। तत् + जनन वृत्तान्तम्—उसके जन्म का वृत्तान्त। आकर्ण्य—

सुनकर । कल्याण परम्परा—कल्याण की श्रेणी । इति+अभिधाय-कहकर । द्विगुणतरम्—अधिक दुगुना । अकारयत्—कराया । प्राप्ते-पर । अहनि दिन । स्वप्नानुरूपम् (स्वप्नस्य अनुरूपम् षष्ठी तत्पु॰)-के अनुरूप । स्वसूनोः—अपने पुत्र का । चकार (कृ धातु लिट लकार पुरुष एक वचन)—किया । आपरेद्युः—दूसरे दिन । सकलाः – सम विप्रजनो चिताः – ब्राह्मणों के योग्य । चक्रे—किया । कृतचूडा करेणादि क्रिया कलापस्य—चूड़ा करण आदि बालकों के सभी संस्कार किये अतिचक्राम—व्यतीत हुआ ।

अर्थ—उसी समय शुकनास की बड़ी ब्राह्मणी मनोरमा से पुत्र का हुआ । तब राजा ने अमृत वर्षा के समान उसके जन्म का समाचार सुन 'ईश्वर के कल्याणों की श्रेणी आश्चर्य जनक है' ऐसा कह कर शुकनास के भवन में जा कर दुगुना उत्सव करवाया । दसवां दिन आने पर शुभ मुहूर्त राजा ने अपने स्वप्न के अनुसार अपने पुत्र का चन्द्रापींड नाम रखा । दिन शुकनास ने भी ब्राह्मणों के योग्य सभी क्रियाये करके ब्राह्मण जाति योग्य वेशम्पायन नाम रखा । क्रमशः बच्चों के मुण्डन आदि सभी संस्कार हुए चन्द्रापीड और वैशम्पायन का बचपन बीत गया ।

अथ तारापीडः ······ आलोकयामास ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—बहिर्नगरात (नगरात बहिः)—नगर से बाह अनुशिप्रम (शिप्रायाः अनु अव्ययी भाव)—शिप्रा नदी के किनारे । सुधाधव (सुधया धवलेन तृतीया तत्पु॰)—चूने से, सफेद । प्राकार मन्डलेन चारदि से । परिवृतम्—घिरे हुए । विद्यामन्दिरम्—पाठशाला । अकारयत् – बनव निखिलविद्योपादानार्थम् (निखिल विद्यानाम् उपादानार्थम् षष्ठी तत्पु॰) सभी विद्याओं को ग्रहण करने के लिये । अर्पयाम्भूव—सौंप दिया । एनम् इसको । आलोकयामास—देखा करता था ।

अर्थ—इसके पश्चात् तारापीड ने शिप्रा नदी के किनारे बहुत बड़ी चू पुती हुई चार दिवारी से घिरी हुई पाठशाला बनवाई उसमें शुभ दिन च पीड को वैशम्पायन के साथ सभी विद्याये ग्रहण करने के लिये आचार्यों सौंप दिया ।

चन्द्रापीडोऽपि ....कौशलम् अवाप।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अचिरेण+एव—शीघ्र ही। यथा स्वम्—यथा क्ति। आत्म कौशलम् (आत्मनः कौशलम् षष्ठी तत्पु०)—अपना कौशल। कटयद्भिः— प्रकट करने वाले। उपदिश्यमानाः—उपदेश दिया जाता हुआ। ग्राह—ग्रहण की। पदे—शब्द में। सर्वेषु+आयुध+विशेषेषु—सभी विशेष कार के अस्त्र—शस्त्रों में। रथ चर्यासु—रथ यात्रा में। तुरंगमेषु—घुड़ वारी में। वाद्येषु—बाजों में। गान्धर्व विद्यासु—गान विद्या में। शकुनिम- ज्ञाने—पक्षियों की आवाज को जानने में। विषापहरणे—विष दूर करने में। वाप—प्राप्त किया।

अर्थ— चन्द्रापीड ने शीघ्र यथाशक्ति अपना कौशल प्रकट करने वाले तथा ोग्य पात्र के कारण उत्साह युक्त आचार्यों द्वारा बताई जाने वाली सभी द्याओं को ग्रहण कर लिया। जैसे शब्द, वाक्य, प्रमाण, धर्म शास्त्र राज- ीति, व्यायाम विद्या सभी प्रकार के शास्त्रों, रथ यात्रा, हाथी की सवारी ुड़सवारी, वीणा, बांसुरी आदि बाजों का बजाना, नृत्य विद्या, गान विद्या, क्षियों की आवाज को पहचानने, यन्त्र प्रयोग, विष को दूर करना, सभी लिपियों तथा सभी देश की भाषाओं के ज्ञान दूसरी विशेष कलाओं के ज्ञान में त्यधिक कुशल हो गया।

पृष्ठ १० —सहजास्य वृकोदरस्य........विहरयांचकार।

शब्दार्थ तथा व्याकरण— सहजा स्वाभाविक। वृकोदरस्य+इव (गुण न्धि)—भीम के समान। आविवभूव—प्रकट हो गई। महाप्राणसा—महा- क्तिशालिता। वलातरून—छोटे पेड़ों को। मृणालदण्डान+इव—कमल की डण्ठल के समान। लुलाव—काट दिया। दशपुरुष संवाहन योग्येन—दश पुरुषों द्वारा उठाने योग्य। अयोदण्डेन—लोहे के दण्ड से। श्रमम्-परिश्रम। ऋते -- बिना, अतिरिक्त। अनुचकार—अनुसरण किया। सर्व विश्रम्मस्थानम—सब प्रकार से विश्वास करने योग्य। निमेषम्+अपि—पल भर भी। स्थातुम्-- ठहरना। शशाक--सका। विरहयांचकार—पृथक करता था।

अर्थ--इसमें सम्पूर्ण लोक को चकित करने वाली भीम के समान महा

शक्तिशालिता प्रकट हो गई। एक ही कृपाण से छोटे छोटे पेड़ों को इ
नाल के समान काट देता था। वैशम्पायन ने महाशक्तिशालिता के अति
सभी कलाओं में चन्द्रापीड का अनुकरण किया। वह चन्द्रापीड का सब प्र
से विश्वसनीय एक दूसरे हृदय के समान परम मित्र था। उसके बिना।
भर भी रह नहीं सकता था वैशम्पायन भी क्षण भर के लिए भी उससे वि
नहीं होता था।

अथ तस्य चन्द्रापीडस्य········प्राहिणोत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—प्रादुर्भवन—प्रकट होता हुआ। रमणी
सुन्दरता को। पुपोष—पुष्ट किया। वक्षस्थलम्—छाती। वितस्तार–वि
हो गई। उरुदण्ड द्वयम्—दोनों जंघायें। अपूर्यंत—भर गई, पुष्ट हो ग
मध्यभाग—कटिभाग। तनिमानम्—क्षीणता। अभजत्—प्राप्त हुआ। प्र
मानम्—पृथुलता, मोटापन। आततान—फैल गई। उपययौ—प्राप्त हु
गुरु—भारी। बभूव—हो गया। आजगाम्—प्राप्त हुआ। समारूढ़ यौव
रम्भम् (समारूढ़ यौवनारम्भः यस्य तम बहुव्रीहि)—जिसका यौवन आर
हो गया। अधीताशेषविद्यम् (अधीता अशेषः विद्या येन तम बहुव्रीहि)—
विद्याओं को पढ़ चुकने वाले। अनुमोदित—अनुमति दिया हुआ। आसेतु
लाने के लिये। प्राहिणोत–भेजा।

अर्थ—इसके पश्चात् चन्द्रापीड का यौवनारम्भ होते हुए उसकी सु
शोभा हो गई। छाती चौड़ी हो गई। दोनों जंघायें भर गई। कटि में क्षीण
आ गई। नितम्ब भाग मोटा हो गया। दोनों भुजायें लम्बी हो गई।
का ऊपरी भाग भारी हो गया। स्वर में गम्भीरता आ गई। इस प्रकार
यौवनारम्भ वाले सभी विद्याओं को पढ़े हुए आचार्यों द्वारा अनुमति दिए
चन्द्रापीड़ को लाने के लिये राजा ने बलाहक नाम के सेनापति को भेजा।

पृष्ट १०-११–सगत्वा विद्यागृहम् ···· द्वारि तिष्ठति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—द्वा स्थैः—द्वार पर स्थित। प्रविश्य–प्रवेश
प्रणम्य—प्रणाम करके। व्यजिज्ञपत—निवेदन किया। समाज्ञापयति–
देते हैं। अधीतानि—अध्ययन कर लिया। निर्गमाय—निकलने के लि

इन्द्रायुध घोडा

भवतः—आपका। वत्सर—वर्ष। संपिण्डितेन षोडसेन—सवा सोलह वर्ष के। प्रवर्द्धसे—बढ़ते हैं। निर्गत्य—निकल कर। तुरंगमः—घोडा। प्रेषितः—भेजा हुआ।

अर्थ—उसने पाठशाला मे जाकर द्वार में स्थित होकर निवेदन करके प्रवेश करके और प्रणाम करके बोला—हे राजकुमार! महाराज आज्ञा देते हैं कि हमारी कामना पूरी हो गई। तुम शास्त्रों का अध्ययन कर चुके हो। सभी आचार्यों द्वारा विद्यागृह से निकलने की अनुमति दे दिये गये हो। आपके विद्यागृह में निवास करते हुए यह दसवां वर्ष है। आप छटे वर्ष में प्रविष्ट हुए थे। इस प्रकार सवा सोलह वर्ष के आप वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इसलिये आज यहां से निकलकर सुख पुर्वक राज्य सुख को भोगिए और यह तीनों लोकों में एक मात्र रत्न इन्द्रायुध नामक महाराज द्वारा भेजा हुआ घोड़ा द्वार पर स्थित है।

एषः खलु देवस्य·········विस्मितः बभूव।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—परसीकाधिपतिना (परसय एकाधिपतिः तेन षष्ठी तत्पुरुष)—फारस दे के बादशाह ने। जलनिधि जलात् (जलनीधेः जलात् षष्ठी तत्पुरुष)—समुद्र के जल से। उत्थितम्–उठा हुआ। अयोनिजम् (योन्याः जातः योनिजः अयोनिज तम अयोनिजम् नञ् समास)—जिसका जन्म योनि से नहीं हुआ। असादीतम्—पाया। महाराज+अधिरोहण योग्यम् (महाराज्य अधिरोहण योग्यम् षष्ठी तत्पुरुष)—महाराज की सवारी के योग्य संदिश्य - संदेश देकर। प्रहितः—भेजा। अनुगृह्यताम् अनुगृहीत कीजिए। अधिरोहणेन सवारी से। इति+अभिधाय—ऐसा कहकर। विरत वचसि—बोलने से रुकने पर। शिरसिकृत्वा - सिर पर धारण करके। निर्जंगमिषुः—निकलने के लिये इच्छुक। अखिल लक्षणोपेतत्—सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त अति प्रमाणम्—बहुत विशाल। अद्राक्षीत्–देखा। अम्वरुपातिशयम साधारण घोड़ों से विशेष। नितराम्—अत्यधिक।

अर्थ यह घोड़ा महाराज के समीप फारस देश के बादशाह ने समुद्र के जल से निकले हुए स्वयं उत्पन्न इस श्रेष्ठ घोड़े को मैंने प्राप्त किया है जो

महाराज की सवारी के योग्य है ऐसा सन्देश देकर भेजा है। इसलिये इस पर सवार होने की कृपा कीजिये। ऐसा कहकर बलाहक के मौन होने पर चन्द्रापीड ने पिता की आज्ञा को सिर पर धारण करके निकलने की इच्छा करता हुआ सभी लक्षणों से युक्त बहुत विशाल इन्द्रायुध को देखा। चन्द्रापीड साधारण घोड़ों से विशेष पहले कभी न देखे हुए उस इन्द्रायुध को देख कर अत्यधिक चकित हुआ।

आसीच्चास्य मनसि ······· अस्य दिव्यताम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण आसीत+च+अस्य। मनसि—मन में। सपै-वता+इव—देवता के समान। जनयति—उत्पन्न करता है। शरीरान्तराणि—दूसरा शरीर। अध्यासते धारण करते हैं। असंशयम—निःसन्देह। शाप-भाजा (शाप भजते इति शापभाज तेन शापभाजा)—शाप दिया हुआ। भवि-तव्यम् —होना चाहिए। आवेदय त+इव—बता सा रहा है। मद्+अन्तः करणन् —मेरा हृदय।

अर्थ—इसके (चन्द्रापीड के) मन में ऐसा था—बहुत तेजस्वी तथा महा शक्तिशाली होने के कारण इसकी आकृति देवता के समान है। इसलिए सत्य ही सवारी करने में भय सा उत्पन्न करता है। क्योंकि देवता भी शाप के कारण दूसरा शरीर धारण करते ही हैं। निःसन्देह यह भी कोई शाप पाया हुआ महापुरुष होगा। मेरा हृदय इसकी दिव्यता को बताता है।

पृष्ठ ११-१२–इति विचिन्तयन्नेव········ पितरम् अपश्यत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—आरुरुक्षु—चढ़ने का इच्छुक। उपसृत्य—समीप जाकर। अर्वन्—हे घोड़े। यः+असि—जो हो। मर्षणीयः—क्षमा करने योग्य। अरोहणातिक्रम (आरोहणस्य अतिक्रमः षष्ठी तत्पुरुष)—आरोहण का अपराध। आमन्त्रयाम्बभूव—निवेदन किया। विदिताभिप्रायः (विदितः अभि-प्रायः येन सः बहुव्रीहि)—अभिप्राय को जानने वाला। तिर्यक–टेढ़ा, तिरछा ह्रेषाखम्· हिनहिनाना। मधुर ह्रेषितेन—मधुर हिनहिनाने से। दमाभ्यनुज्ञ —अनुमति दिया हुआ। तुरगान्तरारूढ़ेन—दूसरे घोड़े पर सवार। प्रस्थाय —चलकर। प्रणम्यमानः—प्रणाम किया जाता हुआ। आसाद्य—पहुंचकर अवततार—उतरा। अवतीर्य—उतर कर। अवलम्ब्य—सहारा देकर। पुर

—आगे। उपदिश्य मान मार्ग—(उपदिश्यमानं मार्ग यस्य स बहुव्रीहि)—जिसे मार्ग बताया जा रहा हो। अतिक्रम्य—पार करके। निषण्णाम्—बैठे हुए।

अर्थ—इस प्रकार सोचते हुए ही सवारी के लिए इच्छुक चन्द्रापीड़ उस घोड़े के समीप पहुंचकर बोले 'हे महात्मा! हे घोड़े! आप जो भी हो आप को नमस्कार है। मेरा यह सवारी का अपराध क्षमा कीजिये।' इस इन्द्रायुध ने अभिप्राय जानते हुए के समान उसे तिरछी दृष्टि से देखकर हिनहिनाने का शब्द किया। इस मधुर हिनहिनाने के शब्द से अनुमति दिये हुये के समान चन्द्रापीड इन्द्रायुद्ध पर सवार होकर, दूसरे घोड़े पर वैशम्पायन के साथ चल कर उत्सुक नगर वासियों द्वारा प्रणाम किया जाता हुआ राजभवन के द्वार पर पहुंचकर घोड़े पर से उतरा। उतर कर हाथ से वैशम्पायन का हाथ पकड़ कर विनय पूर्वक आगे २ चलने वाले पलाहक द्वारा मार्ग दिखाया जाता हुआ, सात बड़े-बड़े भवनों को पार करके उसने हंस के समान स्वच्छ पलङ्ग पर बैठे हुए पिता को देखा।

दृष्टा च तम् ······ अत्यवाह्यत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण · अवनतेन—झुके हुए। प्रणनाम—प्रणाम किया। एहि—आओ। अभिदधान—कहते हुए। आलिलिंग—आलिंगन किया। आलिङ्गतः + उन्मुक्तः + च—और आलिंगन करके मुक्त किया हुआ। निषषाद—बैठा। विसर्जित—छोड़ा हुआ। अयासीत—चला गया। अवास्थाप्य—स्थापित करके। उपदर्शितविनयः (उपदर्शितः विनयः येन स बहुव्रीहि)—विनय दिखाता हुआ। मौलिना—मस्तक से। ववन्दे—वन्दना की। ससम्भ्रमम्—बड़े वेग से। गाढ़म् जोर से। अभिनन्द्य—अभिनन्दन करके। आजगाम—आ गया। अत्यवाह्यत्—व्यतीत किया।

अर्थ—चन्द्रापीड ने उनको देखकर बहुत दूर से झुकाये हुए सिर से प्रणाम किपा। तारापीड ने 'आओ, आओ' ऐसा कहते हुए दूर से ही भुजायें फैलाते हुए जोर से उसका आलिंगन किया। हृदय से लगाकर मुक्त किया हुआ चन्द्रापीड पिता के चरणों के समीप धरती पर ही बैठ गया। घड़ी भर ठहर कर

पिता द्वारा मुक्त किया हुआ चन्द्रापीड माता के समीप जाकर प्रणाम करके वैशम्पायन के साथ शुकनास से मिलने के लिये चला गया। द्वार पर ही घोड़े को रखकर विनयपूर्वक भवन में प्रवेश करके दूर से झुके हुए मस्तक से शुकनास को प्रणाम किया। शुकनास ने बड़े वेग से उठकर जोर से हृदय से लगा लिया इसके पश्चात् उसके द्वारा सम्मान पूर्वक आशीर्वादों से स्वागत किये जाने के पश्चात उनसे मुक्त होकर अपने भवन में आ गया। वहां स्नान आदि कार्य करके उस दिन को व्यतीत किया।

पृष्ठ १३—अपरेद्यु श्च प्रभाते ·······उपनीता।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अपरेद्यु—दूसरे दिन। सर्वान्त: पुराधिकृत:—सम्पूर्ण अन्त:पुर में अधिकृत। रक्ताशुकेन—लाल रेशमी वस्त्र से। महानुभावाकारयां—महानुभाव के आकार वाली। विज्ञापयामास—निवेदन किया। समाज्ञापयति—आज्ञा देती है। अवजित्य—जीत कर। कुतुलेश्वर दुहिता (कुतूलानाम्—ईश्वर कुतुलेश्वर तस्य दुहिता षष्ठी तत्पुरुष)—कुतूल देश के राजा की पुत्री। अभिधाना—नाम वाली। सतती—होते हुए। आनीय—लाकर। परिचारिका मध्यम्—सेविकाओं के मध्य। उपनीता—रख लिया।

अर्थ—दूसरे दिन प्रात:काल सम्पूर्ण अन्त: पुर में अधिकृत कैलाश नामक कञ्चुकी ने लाल रेशमी वस्त्र से अवगुण्ठन किये हुए तथा महानुभावों के समान आकार वाली कन्या के साथ समीप पहुंचकर चन्द्रापीड से निवेदन किया—हे राजकुमार! महादेवी विलासवती आज्ञा देती है कि इस कन्या को महाराज ने कुतूल देश की राजधानी को जीतकर कुतूल देश के राजा की इस पत्रलेखा नाम की पुत्री को बाल्यावस्था में ही बन्दी जनों के साथ लाकर अन्त पुर की सेविकाओं के मध्य रख लिया था।

सा मया विगत नाथा ······· न मुमोच।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—विगत नाथा (वगत: नाथ: यस्यां सा बहुव्रीहि)—अनाथ। समुपजातस्नेहया (समुपजात: स्नेह: यस्या सा तया बहुव्रीहि)—स्नेह स युक्त। दुहितृ निर्विशेषम—पुत्री के समान। उपलालिता—पाला। सम्वर्धिता बढ़ाया। [illegible]। भवत:—आपकी। ताम्बुल

करंक वाहिनी—पान की पीटारी को धारण करने वाली। अस्याम्—इसके प्रति। भवितव्यम्—होना चाहिए। चापलेभ्य:—चंचला से। निवारणीय: —रोकना चाहिए। शिष्या+इव (गुण सन्धि)—शिष्या के समान। दृष्टवा —देखना चाहिए। संदिश्तते—सन्देश दिया जाता है। प्रयतितव्यम्—प्रतत्न करना चाहिए। यथा+इयम्—जिस प्रकार यह। परिचारिका—सेविका। अभिधाय–कह कर। यथा + आज्ञापतति+अम्वा—माता की जैसी आज्ञा। प्रेषयामास—भेज दिया। तत:+प्रभृति—तब से। राजसूनो: (राज्ञ: सूनु: तस्य षष्ठी तत्पुरुष)—राज पुत्र का। पार्श्वम् समीपता। मुमोच—छोड़ा।

अर्थ—मैंने उसको अनाथ राजपुत्री है ऐसा जानकर स्नेह उत्पन्न हो जाने के कारण पुत्री के समान पाल पोसकर बड़ा किया। अब यह आपकी योग्य ताम्बूल की पिटारी को धारण करने वाली दासी होगी ऐसा सोचकर मैंने भेजा है। चिरजीव को इसके प्रति सामान्य सेविका का व्यवहार नहीं करना चाहिये। अपने मन के समान इसको भी चंचला से रोकना चाहिये। इसे शिष्या के समान देखना चाहिये। राजकुमार इसके स्वभाव से अपरिचित हैं इसलिये इस प्रकार सन्देश दिया जाता है। तुम्हें इसके साथ सदा ऐसा बर्ताव करना चाहिए जिससे यह शीघ्र ही तुम्हारी योग्य सेविका सिद्ध हो ऐसा कह कर कैलास के मौन होने पर चन्द्रापीड ने 'जैसी माता की आज्ञा' ऐसा कहकर उसे वापिस भेज दिया। पत्रलेखा उस समय से सेवा का आनन्द प्राप्त करती हुई सदा राजकुमार की समीपता को नहीं छोड़ती थी।

पृष्ठ १४ एव समतिक्रामत्सु········ आरुरोह,

शब्दार्थ तथा व्याकरण—समतिक्रामत्सु—बीतने पर। केषुचित—कुछ। चिकीर्षु—करने का इच्छुक। प्रतिहारान्—सेवकों को। उपकरण सम्भार संग्रहार्थम्—उपकरण की वस्तुये एकत्रित करने के लिये। आदिदेश—आदेश दिया। पुरोधसा—पुरोहित ने। अशेषानि—सम्पूर्ण। निर्वत्य—पुरा करके। उत्क्षिप्त मगल कलश: (उत्क्षिप्त: मङ्गल कलश: येन स: बहु०)—मङ्गल

कलश उठाये हुए। समाहृतेन—लाये हुए। मंत्रपूतेन—मंत्र द्वारा पवि
हुए। वारिणा—जल से। अभिषिषेच—अभिषेक किया। सलिलार्द्र
जल से भीगे शरीर वाला। उपगम्य—पहुंचकर। सर्वतः—चारों
समूद्घुष्यमाण जय शब्दः—जय शब्द की घोषणा किया जाता हुआ।
रोह—बैठा।

अर्थ—इस प्रकार कुछ दिनों के बीतने पर राजा ने चन्द्रापीड का
करने की इच्छा से सेवकों को उपकरण की सामग्री एकत्रित करने का
दिया। सारी सामग्री उपस्थित किए जाने पर पुरोहित के द्वारा राज्य
से सम्बन्धित सभी मङ्गल कार्य पूरा किए जाने पर शुकनाश के साथ
मङ्गल कलश उठाये हुए राजा ने सभी तीर्थों से लाए हुए तथा मंत्र के
पवित्र किए हुए जल से पुत्र का अभिषेक किया। अभिषेक के जल से
शरीर वाले चन्द्रापीड सभा मण्डप में पहुंचकर चारों ओर से जय
किए जाते हुए सिंहासन पर बैठे।

अथ दिग्विजाय ····· दिवसान् अतिष्ठत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—प्रस्थितः—जाता हुआ। प्रदक्षिणाकृ
क्षिणा करके। प्राचीम्—पूर्व दिशा को। त्रिशंकुतिलकाम्—दक्षिण
को वरुण लांछनाम्—पश्चिम दिशा को। सप्तर्षि ताराशवलाम् सप्त
का प्रतिनिधित्व करने वाले सात तारों से रंग बिरङ्गा बनाया हुआ
आकाश खण्ड। विजिग्ये (वि पूर्वक जी धातु आत्मने पद लिट लकार)-देख
उपायनानि—भेंट। प्रतीच्छन्—स्वीकार करता हुआ। अग्रजन्मनः (अग्र
येषां तान् बहुव्रीहि) ब्राह्मणों को। विस्तारयन्—फैलाता हुआ। विक्र
—विचरण किया। कदाचित्—किसी समय। न+अति विप्रकृष्टम्-दिश
जग्राह वश मे कर लिया। विश्राम हेतोः—विश्राम के लिये। कतिपय च
कुछ।

अर्थ—इसके पश्चात् दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हुए चन्द्रा
बहुत बड़ी सेना तथा वैशम्पायन के साथ पृथ्वी की परिक्रमा करके घूम
पहले पूर्व दिशा को, फिर दक्षिण दिशा को, इसके पश्चात् पश्चिम दि
और फिर उत्तर दिशा को जीत लिया। उन दिशाओं में श

ये हुए की रक्षा करता हुआ, भेट स्वीकार करता हुआ, स्थानीय प्रबन्ध
ापित करता हुआ, ब्राह्मणों की पूजा करता हुआ तथा यज्ञ को फैलाता हुआ
ी पर विचरण किया। इस प्रकार क्रमशः सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतता हुआ
सी समय भीलों के निवास स्थान समुद्र के समीप स्थित सुवर्णपुर को जीत
वश में कर लिया। वहां अपनी सेना के विश्राम के लिए कुछ दिन तक
रा।

पृष्ठ १४-१५—एकदा तु तत्रस्थ ··········आसरोहु।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—तत्रस्थ—वहां स्थित। आरुह्य—सवार होकर
या निर्गम—शिकार के लिए निकला हुआ। यदृच्छया—इच्छानुसार।
तीर्णम्—उतरे हुए। अपूर्व दर्शनतया—अपूर्व दर्शन होने के कारण।
ग्रहणाभिलाषः—पकडने की अभिलाषा करता हुआ। उपसर्पन् सरकते
। पलायमानम्—भागते हुए। अनुमार अनुसरण किया। सुदूरम्—
त दूर तक। अतिरभासा—बड़े वेग से। महाजवतया—अत्यन्त तीव्रगामी
ने के कारण। संमुखापतितम्—सामने आए हुए। अति+उच्छ्रितम्—
त ऊंचा। अचल शिखरम्—पर्वत की चोटी।

अर्थ—एक बार वहां स्थित ही इन्द्रायुध पर सवार होकर शिकार के
ए उन्होंने वन मे घूमते हुए अपनी इच्छा से पर्वत के शिखर पर उतरे
ए किन्नर के जोड़े को देखा। अपूर्व दर्शन होने के कारण कौतुक वश उसे
कड़ने की इच्छा करते हुए उसके समीप जाते हुए उसने पहले कभी पुरुष को
देखने के कारण उत्पन्न भय से भागते हुए उस किन्नर युग का बहुत दूर
क पीछा किया। 'यह पकड़ा' ऐसा कहता हुआ अत्यन्त वेग के कारण
िकृष्ट चित वाला चन्द्रापीड़ घोड़े के बहुत तीव्रगामी होने के कारण उस
देश से अकेला ही पन्द्रह योजन तक आकर सामने आए हुए बहुत ऊंचे पर्वत
की चोटी पर चढ गया।

आरूढे च तस्मिन् ·······उपदेक्ष्यति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—आरूढे—सवार होने पर। शनैः शनैः—धीरे
धीरे। निवर्त्य—हटा कर। प्रस्तर प्रतिहत गति प्रसर(प्रस्तरैः प्रतिहतः
गति प्रसरः यस्य स. बहुव्रीहि)—पत्थरों के कारण मन्द गति वाला। श्रम-

स्वेदार्द्रं शरीरम् (श्रमेन स्वेद, श्रम स्वेदः तेन आर्द्रम् शरीरम् यस्य बहुव्री पसीने से भीगे शरीर वाले। विहस्य—हंस कर। अभिनिवेश–प्रभेश, लगा बालिशचरिषु—मूर्खों के कार्य में। गृहीतेन—पकड़ने से। आविष्ट—जा वशीभूत के समान। उत्सृज्य—छोड़ कर। एतावतीम्—इतनीं। आयात: आया। कियत्+अध्वना—कितनी दूर। विच्छिन्नम्—छूट गई। इतः– से। बलम्—सेना। पन्थाः—मार्ग। निरूपितः—देखा। प्रतिनिवृत्य—कर। यास्यामि—जाऊंगा। परिभ्रमता—घूमते हुए। मर्त्य—मनु आसाद्यते—प्राप्त होता है। उपदेक्ष्यति—बतायेगा।

अर्थ—उस पर सवार होने पर धीरे २ वहां से दृष्टि हटाकर पत्थ कारण रुकी हुई गति वाले चन्द्रापीड़ा ने अपने को तथा इन्द्रायुध को प से भीगा हुआ देख कर स्वयं ही हंस कर सोचा ओहो! मैं कितने बड़े नि कार्य में लगा। ओहो! मैं कितना बड़ा मूर्ख हूँ। ओहो! मैं किस प्र मूर्खों के कार्य में आसक्त हुआ। इस किन्नर के जोड़ को पकड़ने से प्रयोजन? मैं क्यों जादू किए के समान अपने परिवार को छोड कर तक आ गया हूं। न मालूम मेरी सेना तथा मेरे अनुयायी यहां से कितनी छूट गए हैं। मैंने इस वन में आते हुए किन्नर के जोड़े पर दृष्टि डाल कारण मार्ग भी नहीं देखा जिससे लौटकर चला जाऊं। इस प्रदेश में हुए मैंने किसी मनुष्य को भी नहीं देखा जो स्वर्णपुर जाने का मार्ग बताये

पृष्ठ १५-१६—श्रुतम् च मया········फलम् आत्मनैव।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—बमुश,—बहुत बार। निर्मानुषम् (मनु रहितम् निर्मानुषम्) मनुष्य रहित। अरण्यम्—बन। मत्+च+अति —और उसको पार करके। प्रतिनिवृत्य – लौट कर। एकाकिना—अके उत्प्रेक्ष्य—देख २ कर। आशाम्—दिशा को। अङ्गीकृत्य - स्वीकार कर आत्मकृतानाम् (आत्मना कृतानाम् तृतीया तत्पुरुष)—अपने द्वारा किये हु नियतम्—निश्चित। अनुभवितव्यन्—भोगना चाहिये। आत्मना+एव स्वय ही।

अर्थ– मैंने अनेक बार कहते हुए सुना है स्वर्णपुर के उत्तर में म

से रहित वन है तथा उसको पार करके कैलाश पर्वत है' और यह कैलाश पर्वत है। अब अकेले ही लौटकर स्वयं देख कर केवल दक्षिण दिशा को स्वीकार करके चलना चाहिए । अपने किए हुए दोषों का फल स्वयं ही भोगना चाहिए।

अयम् अधुना भगवान.......... अद्राक्षीत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अधुना—अब। अलंकरोति—सुशोभित करता है। आगृति कतिपयदूर्वा प्रवाल कवलम् (आगृहीतानि कतिपयदूबा—प्रवाल कवलानि येन तम् बहुव्रीहि)—कुछ कोमल घास का भोजन कर चुकने वाले। सरसि—तालाब में। स्नातपीतोदकम् (स्नात: पीत: च उदकम् येन तम् बहुव्रीहि) स्नान कर चुकने वाले और जल पी चुकने वाले। अपगतश्रम (अपगत: श्रम: यस्य तम् बहुव्रीहि) थकान से रहित। विश्रम्य—विश्राम करके। चिन्तयित्वा—सोच कर। अन्वेषमाण: —खोजते हुए। मुहुर्मुहु वार बार। दत्तदृष्टि,—दृष्टि डालता हुआ। पर्यटन्—घूमता हुआ। जलावगोहोत्थितस्व (जले अवगाह: जलावगाह तेन उत्थितस्य तृतीया तत्पुरुष)—स्नान करके निकले हुए। अचिरात्—शीघ्र। अपक्रान्तस्यस्य—गए हुए। महय-—बड़े। वनगजयूथस्य—जंगली हाथियों के समूह को। पकपटलै:—कीचड़ के समूह से। आर्द्री कृतम्—भीगे। अद्राक्षीत्—देखा।

अर्थ—अब यह भगवान् सूर्य आकाश के बीच में सुशोभित हो रहे हैं। यह इन्द्रायुध भी थक गया हैं। इसलिए इसको कुछ कोमल घास खिला कर किसी तालाव में स्नान करके, करवा कर और जल पिला कर तथा स्वयं भी जल पीकर और किसी पेड़ के नीचे छाया में घड़ी भर विश्राम करके जाऊंगा ऐसा सोच कर खोजते हुए, वार वार इधर उधर दृष्टि डाल कर घूमते हुये कैलाश पर्वत के जंगली हाथियों के झुंड के पैरों से उठे हुए कीचड़ के समूह से भींगे मार्ग को देखा।

उपजातजलाशय शंक ..... दृष्टवान्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उपजात जलाशय शंक: (उपजात: जलाशयस्य शंका यस्य स: बहुव्रीहि)—जिसे जलाशय की शका हो गई। तम् प्रतीयम् —उसकें विपरीत। अनुसरन्—पीछे जाता हुआ। तरूषण्डम्—वन। अत्या-

यतम्—बहुत विस्तृत । प्रविश्य—प्रवेश करके । आपूर्ण पर्यन्नम्—पूर्णतया भरा हुआ होने पर भी । रिक्तम्—खाली । उपलक्ष्यमाणम्—दिखाई पड़ने वाले । अखिल + इन्द्रिय + आह्लादन समर्थम् (अखिलानां इन्द्रियानां आह्लादने समर्थः यः तम् बहुव्रीहि)—सम्पूर्ण इन्द्रियों को आनन्दित करने में समर्थ। दृष्टवान —देखा ।

अर्थ—जलाशय के होने की शंका से युक्त चन्द्रापीड ने उसके विपरीत दिशा की ओर जाते हुए कैलाश पर्वत के नीचे भाग से कुछ दूर जाकर उसी कैलाश पर्वत के पूर्वोत्तर दिशा में एक बहुत विस्तृत वन में प्रवेश करके बीच मे स्थित, स्वच्छ जल से पूर्णतया भरा होने पर भी खाली सा दिखाई पड़ने वाले बहुत सुन्दर सम्पूर्ण इन्द्रियों को आनन्दित करने में समर्थ अच्छोद नामक तालाब को देखा ।

पृष्ठ १७ – तदालोकन मात्रेणैव ··· आस्तीर्य निषसाद ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—यत् + आलोकन मात्रेण + एव उसको देखने मात्र से ही । आसाद्य—पहुंचकर । तुरगात्—घोड़े से । तुवतार—उतरा । अवतीर्य—उतरकर । व्ययनीत पर्याणम् (व्ययनीतः पर्याणः यस्य तम बहुव्रीहि —जीन काठी उतारे हुये । अवतार्य—उतार कर । इच्छया—इच्छानुसार। उत्थाव्य—उठ कर । समीपवर्तिन—समीप स्थित । कनक मय्या—सोने की बनी हुई । शृङ्खलया —जंजीर से । वद्‌ध्वा—बांध कर । अवततार—उतरा प्रक्षालित कर युगलः (प्रक्षालित कर युगलः येन सः बहुव्रीहि)—दोनों हाथ धो चुकने वाला । आहारम्—भोजन । उदगात्—ऊपर निकला । प्रत्यग्रभिन्नै —तुरन्त तोड़े हुए । कमलिनी पलाशैः—कमलिनी के पत्तों से । लतामण्डप परिक्षिप्ते—लता मण्डप से घिरे हुए । स्त्रस्तरम्—विस्तर । आस्तीर्य—बिछा कर । निषसाद बैठा ।

अर्थ—उसको देखने मात्र से ही थकान रहीत चन्द्रापीड उसके दाहिने किनारे पर पहुंचकर घोड़े पर से उतरा और उतर कर जीन काठी उतारे हुए धरती में लेटकर उठे हुए इन्द्रायुध को कुछ घास खिलाकर तालाब में उतार कर जल पिलाकर और इच्छानुसार स्नान करा कर उसका समीप स्थित पेड़ की शाखा के नीचे सोने की जंजीर से दोनों पैर बांध कर स्वयं

भी जल में उतरा दोनों हाथ धोकर जल का आहार करके तालाब के जल से बाहर निकला। तुरन्त तोड़े हुये कमलिनी के पत्तों का बिस्तर बिछाकर लता-मण्डप से घिरे हुये शिला पर बैठा।

मुहूर्तं विश्रान्तश्च ···· संप्रतस्थे।

शब्दार्थ तथा व्याकरण विश्रान्तः—विश्राम किया हुआ। सरसः—तालाब के। समुच्चरन्तम्—उच्चारण किये जाने वाले। श्रुति सुभगन्—कानों को सुन्दर लगने वाले। वीणातन्त्री झंकारमिश्रम्—वीणा के तारों के झंकार से मिश्रित। अश्रृणोत—सुना। गीतसम्भूतिः गीत की उत्पत्ति। दत्तपर्याणम्—जीन कसे हुये। सरस्तीर सरण्या—तालाब के किनारे के मार्ग से। संप्रतस्थे—चला।

अर्थ घड़ी भर विश्राम कर चुकने पर उस तालाब के उत्तरी किनारे पर उच्चरित होने वाले तथा वीणा के तारों के झंकार से मिश्रित होने के कारण कानों को मधुर लगने वाले गीत के शब्द को सुना। सुनकर यहाँ गीत का शब्द कहां से आया ऐसा विचार कर कुतूहल वश जीन कसे हुये इन्द्रायुध पर सवार होकर तालाब के पश्चिमी किनारे के मार्ग से चला।

तत्र च शून्य ···· कन्यकां ददर्श।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सिद्धायतने—मन्दिर में। चतुस्तम्भस्फटिक मण्डपिकातल प्रतिष्ठितस्य—चार खम्भों वाले स्फटिक के मण्डप में स्थित। चराचर गुरोः (चरश्च चराचरो तयोः गुरुः षष्ठी तत्पुरुष)—चर और अचर जगत के स्वामी। त्र्यम्बकस्य—शिवजी की। आश्रित्य—आश्रय लेकर। अभिमुखीम्—सामने मुख करके। आसीनाम्—बैठी हुई। उपरचितम् ब्रह्मासनाम् (उपरचितम् ब्रह्मासन यया ताम् बहुव्रीहि)—ब्रह्मासन से बैठी हुई। दहासेन—दाहिनी। उत्संगताम्—गोद में रखी हुई। आस्फालयन्तीम्—बजाती हुई। अनेकभावानुविद्धया—अनेक भावों से भरी हुई। गीत्या—गीत से। विरूपाक्षम्—शिवजी को उपवीणतन्तीम्—वीणा बजाकर स्तुति करती हुई। प्रतिपन्न पाशुपत व्रताम् (प्रतिपन्नम् पाशुपत व्रतम् यया सा ताम् बहुव्रीहि)—शिवजी को प्रसन्न करने का व्रत करने वाली। अष्टदश देशीयाम्—अठारह वर्ष की आयु वाली। ददर्श—देखा।

अर्थ—वहाँ शून्य मन्दिर में चार खम्भों वाले स्फटिक के मण्डप में चराचर जगत के स्वामी भगवान शिवजी की दक्षिण मूर्ति का आश्रय ले सामने ब्रह्मासन से बैठी हुई दाहिने हाथ से गोद में रखी वीणा को बजाती अनेक भावों से भरे गीत से भगवान शिव की वीणा के द्वारा स्तुति करती शिव जी को प्रसन्न करने के लिये व्रत धारण करने वाली अठारह वर्ष आयु वाली कन्या को देखा।

पृष्ठ १८—ततोऽवतीर्य........तस्थौ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अवतीर्य—उतर कर। तुरङ्गमम्—घोड़े उपसृत्य—समीप जाकर। भगवते—भगवान को। प्रणम्य प्र+पूर्वक नम् ल्यप् प्रत्यय का रूप)—प्रणाम करके। त्रिलोचनाय—शिव को दिव्य —दिव्य स्त्री को। अनिमेष पक्ष्मणा—निश्चल पलकों वाली। चक्षुषा नेत्र से। निरूपयन्—देखते हुये। स्फटिक मण्डपिकायाम्—संगमरमर के मे। स्तम्भम्—खम्भे को। आश्रित्य सहारा लेकर। गीत समाप्ति अवसर —गीत समाप्त होने का अवसर। प्रतीक्षमाणः—प्रतीक्षा करता हुआ। —ठहरा।

अर्थ—तब उतर कर और घोड़े को पेड़ की शाखा से बांध कर जाकर भगवान शिव को भक्ति पूर्वक प्रणाम किया। वह उसी दिव्य युवती स्थिर पलकों वाली आंखों से देखता हुआ उसी संगमरमर के बने मण्डप में खम्भे का सहारा लेकर गीत समाप्त होने की प्रतीक्षा करता हुआ ठहरा रहा।

अथ गीतावसाने ...... अनुवव्राज।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—गीतावसाने (गीतस्य अवसाने षष्ठी तत्पुरुष) गीत समाप्त होने पर। मूकीकृत वीणा (मूकीकृता वीणा येन सा बहुव्रीहि) वीणा बजाना बन्द करने वाली। समुत्थाय उठकर। कृतहर प्रणामा शिव को प्रणाम करने वाली। परिवृत्य—मुड़कर। आबभाषे—बोली अतिथये—अतिथि के लिये। अनुप्राप्तः—पहुंचे। आगम्यताम्—आइये अनुभूयताम्—स्वीकार कीजिये। उक्तः—कही हुई। सम्भाषण मात्रेण एव—केवल बात चीत से ही। मन्यमानः—मानता हुआ।

ज्ञापयसि—जैसी आज्ञा देती है। इति+अभिधाय—ऐसा कह कर। अप-यान्तीम्—जाती हुई। अनुवव्राज—पीछे २ गया।

अर्थ—इसके पश्चात् गीत समाप्त होने पर वीणा बजाना बन्द करके वह कन्या उठ कर, प्रदक्षिणा करके शिवजी को प्रणाम करके चन्द्रापीड की ओर मुड़कर बोली। अतिथि का स्वागत है। हे महाभाग! आप यहां तक कैसे पहुंचे? उठकर आइये। अतिथि सत्कार स्वीकार कीजिये। उसके द्वारा इस प्रकार कहने पर चन्द्रापीड केवल बात चीत से ही अपने को धन्य मानता हुआ उठकर भक्ति पूर्वक प्रणाम करता हुआ जैसी आपकी आज्ञा ऐसा कह कर शिष्य के समान उस जाती हुई कन्या के पीछे २ चला।

पृष्ठ १८ पदशतमिव गत्वा ……… गुहाम् अद्राक्षीत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण पदशत मात्रम्—केवल सौ कदम। गत्वा—जाकर। निरन्तरैः—घने। तमाल तरुभिः—तमाल के पेड़ों से। अन्धकारित पुरोभागम् (अन्धकारितः पुरोभागः यस्याः सः ताम् बहुव्रीहि)—जिसके सामने का भाग अन्धकार युक्त हो गया था। अन्तः स्थापितम् मणि कमण्डलुमण्डलम् यस्या ताम् बहुव्रीहि)—जिसके अन्दर मणि के बने कमण्डलु रखे हुये थे। एकान्तावलम्बित योग पट्टिकाम् (एकान्ते अवलम्बिता योग पट्टिका यस्याम् सा ताम् बहुव्रीहि)—जिसके एक भाग में योग पट्टिका लटकी हुई थी। विशाखिकाशिखरनिबद्धेन (विशाखिकाया शिखरेन निबद्धम् तेन बहुव्रीहि)—विशाखिका के शिखर से बन्धे हुए। नारिकेलफलवल्कलतयेन—नारियल के फल के छिलके से बनी हुई। उपानत्+युगेन एक जोड़ा जूते से। उपेताम्—युक्त। वल्कल-शयनीयसनाथैकदेशाम् वल्कलस्य शयनीयेन सनाथी कृतः एकदेशः यस्या सा ताम् बहुव्रीहि)—वल्कल वाली शय्या से युक्त एक भाग वाली। शखमयेन—शंख के बने हुए। भिक्षाकपालेन—भिक्षा पात्र से। अधिष्ठाताम्—युक्त। सन्निहित भस्मालाम्बुकाम्—समीप में स्थित भस्म युक्त कमण्डलु वाली। अद्राक्षीत्—देखी।

अर्थ—केवल सौ कदम जाकर घने तमाल के वृक्षों से अन्धकार युक्त अग्र भाग वाली गुफा को देखा जिसके अन्दर मणि के बने कमण्डलु रखे थे, जहां

एक भाग में योग पट्टिका लटकी हुई थीं, जहां खूंटी के ऊपर नारि छिलके से बने जूनों का जोड़ा लटका हुआ था, एक ओर वल्कन की वनी सुशोभित हो रही थी, जहां शंख का बना हुआ भिक्षा पात्र रखा था जिसमें समीप ही भस्म से युक्त तूम्बी रखी थी।

तस्याश्च द्वारि.........आचचक्षे।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—द्वारि—द्वार पर। समपविष्टः—बैठा वल्कशयनशिरोभाग विन्यस्त वीणया (वल्कलस्यशनीयः वल्कलशयनीयः शिरोभागे विन्यस्ता वीणा यया मा तया बहुव्रीहि)—वल्कल के शयन के हाने जिसने वीणा को रख दिया है। तया—उसके द्वारा। विरचिताम् गई। अतिथिसपर्याम्—अतिथि सत्कार को। सप्रश्रयम् —सम्मान प्रतिजग्राह—स्वीकार किया। कृतपतिथ्यया (कृतम् आतिथ्यय यया तया —अतिथि सत्कार कर चुकने वाली। द्वितीय शिलातले उपविष्टया (शिलांतले उपविष्टा या तया बहुव्रीहि)—दूसरे शिलातल पर बैठी हुई। पृष्टः—पूछा हुआ। दिग्विजपादारम्य—दिग्विजय से लेकर। किन्नरमि सरण प्रसगेन—किन्नर के जोड़े का पीछः करने के प्रसङ्ग से। आत्म अपना। आचचक्षे—वंताया -

अर्थ—उसके द्वार पर शिलातल पर बैठते हुए चन्द्रापीड ने वल्कल बिस्तर के सिरहाने वीणा रख देने वाली उस महाश्वेता द्वारा की हुई पूजा को सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। अतिथि सत्कार कर चुकने वाली दूसरे शिलातल पर बैठी हुई महाश्वेता द्वारा क्रमशः पूछने पर चन्द्रापी दिग्विजय से लेकर किन्नर मिथुन के अनुसरण के प्रसङ्ग से अपने आने का सम्पूर्ण वृतान्त वता दिया।

पृष्ठ १९—अथ सा कन्यकः.........तावत् अवतस्थे।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—समुत्थाय—उठ कर। शंखमयम् (मगट् शंख का वना। आदाय (आ पूर्वक दा धातु ल्यप् प्रत्यय)—लेकर। वि —विचरण किया। अचिरेण—शीघ्र। अपूर्यत्—भर गया। भिक्षा (भिक्षायाः भाजनम् षष्ठी तत्पुरुष)—भिक्षा का पात्र। उपयोगार्य—प्रयो लिये। नियुक्तवना—लगाया। वापगत चेतना—चेतना रहित। सचेतन

ीव—प्रयच्छन्ति—देते हैं। उपजात विस्मयः (उपजातः विस्मयः यस्य सः :ब्रीहि) विस्मय से युक्त। आनीय—लाकर। व्ययनीत—पर्याणम्—जान री रहित। संयम्य—बांधकर। निर्झरजलनिर्वर्तित स्नान विधि (निर्झरस्य नम् तस्मिन् निर्वर्तित स्नानविधि येन सः बहुव्रीहि) झरने के जल में स्नाय ए हुए। उपभुज्य—खाकर। पीत्वा—पीकर। प्रस्रवण जलम् प्रवाह का ल। अवतस्थे—बैठ गया।

अर्थ—इसके पश्चात् उस कन्या ने उठकर शंख का बना भिक्षा पात्र लेकर ों के नीचे विचरण किया। उसका भिक्षा पात्र शीघ्र ही स्वयं गिरे हुए लों से भर गया। उसने आकर चन्द्रापीड को उन्हें खाने के लिए कहा। न्द्रापीड 'हमने इस आश्चर्यजनक दृश्य को पहले कभी नहीं देखा था कि चेतन पेड़ भी सचेतन के समान इस देवी को फल देते हैं' ऐसा विचार करके ाश्चर्य के साथ उठकर उधर ही इन्द्रायुध को लाकर तथा जीन उतार र समीप ही बांध कर झरने के जल में स्नान विधि करके उन अमृत रस से स्वादिष्ट फलों को खाकर तथा बर्फ के समान शीतल जल पीकर प्रवाह जल से हाथ धोकर एकान्त में बैठ गया।

पृष्ठ १९--०—अथ च निर्वर्तित ····· ···· भवती सर्वम् इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—निर्वर्तितसन्ध्योचिताचाराम् (निर्वर्तितः सन्ध्यो-चना, आचारः यया ताम् बहुव्रीहि) सन्ध्याकालीन यथोचित सन्ध्यावन्दना र चुकने वाली। विस्रब्धम्—शान्ति पूर्वक। उपविष्टाम्—बैठी हुई। सप्र-यम्—सम्मान पूर्वक। उपसृत्यः—समीप जाकर। सनृपविश्य—बैठ कर। वादीत्—बोला। दर्शनाद् प्रभृति—दर्शन के समय से लेकर। कतरन्—कया। मरुताम्—वायु के। जन्मना—जन्म से। कुसुमसुकुमारे—फूल के समान ोमल। वयसि—आतु में अमानुषम्—मनुष्य रहित। वन+इदम्—कहा ह। प्रतिभाति—प्रतीत होता है। न+अतिखेदकरम्—अत्यन्त दुखदायक। ादुजृह्यमानम्—अनुगृहीत किया जाता हुआ। आत्मानन्—अपने को। आवेदयतु तोइये।

अर्थ—इसके पश्चात् सन्ध्याकालीन पूजा पाठ तथा भोजन करके निश्चिन्त होकर शिलातल पर बैठी हुई उस कन्या के समीप सम्मानपूर्वक पहुंच कर

तथा समीप ही बैठ कर चन्द्रापीड ने कहा—हे भगवती ! आपके दर्शन के समय से मुझे इस विषय में बड़ा कुतूहल है। आपने वायु के ऋषियों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं में से किस कुल को अपने जन्म से अनुगृहीत किया? इस फूल के समान सुकुमार नवीन आयु में किस लिये व्रत धारण किया? इस निर्जन वन में आप किस कारण अकेली निवास करती हैं? कहां तो आयु और कहां इन्द्रियों का दमन? मुझे यह अद्भुत सा प्रतीत होता है। लिए यदि अधिक दुखदायक न हो तो अपनी बात बताकर अनुगृहीत करना चाहता हूं। आप सब कुछ बताने की कृपा कीजिए।

पृष्ठ २०—एवम् अभिहिता········नाम कृतवान्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—मभिहिता—कही गई। किम+अपि+—कुछ हृदय में। ध्यायन्ती—ध्यान करती हुई। निश्वस्य—सांस ले। जन्मन: प्रभृति—जन्म से लेकर। श्रुतेन—सुनने से। तथापि—फिर। श्रूयताम—सुनिये। भवत:—आपके। श्रुतिविषयम्—कानों में। आपतितम् +एव—पड़ा ही है। अतिप्रभूतानाम्—बहुत सी। सुते—दो पुत्रियां। —हुई। तत्र—उनमें। सोममयूरवसम्भवात् (सोमस्य मयूरवा: तेभ्य: सम्भव: अपादन तत्पुरुष)—चन्द्रमा की किरणों से उत्पन्न। अप्सरस:—अप्सरा। समुद्भूताम्—उत्पन्न हुई। हिमकर किरणावदातवर्णाम् (हिमकरस्य किरणा: तत् वव अवदात: वर्ण यस्ता सा ताम् वहुव्रीहि–चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ वर्ण वाली। प्रणयिनीम् अकरोत् विवाह किया। इदृशी—ऐसी। विगत लक्षणा—लक्षणों से रहित, भाग्यहीन। एकां+एव—एक ही। पुत्री। अनपत्यतया—सन्तान हीनता के कारण। सुतजन्मातिरिक्तेन—पुत्र जन्म से ही अधिक। मत्+जन्म—मेरा जन्म। अभिनन्दितवान्—स्वागत किया। अहनि—दिन में तथार्थम्—वास्तव में। कृतवान्—किया।

अर्थ—इस प्रकार कहने पर उसने अपने मन में कुछ ध्यान करते हुए एक लम्बी सांस लेकर उत्तर दिया—हे राजकुमार ! मुझ मन्दभागिनी के जन्म से लेकर अब तक के इस वृत्तान्त को सुनने से क्या लाभ ? फिर भी यदि अधिक उत्सुकता है तो सुनिये। यह तो आपने सुना ही होगा कि दक्ष प्रजापति की बहुत सी कन्याओं में मुनि और आरिष्टा नाम की दो कन्यायें हुई।

अरिष्टा के पुत्र हंस नामक गन्धर्वराज ने चन्द्रमा किरणों से उत्पन्न अप्सराओं के कुल से उत्पन्न हुई तथा चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ वर्ण वाली गौरी नामक कन्या से विवाह किया। उनकी मैं ऐसे अशुभ लक्षणों वाली सहस्त्रों प्रकार के दुख को भोगने वाली एक ही सन्तान उत्पन्न हुई। मेरे पिता ने अत्यन्त हीन होने के कारण पुत्र जन्म से भी अधिक उत्सव मानकर मेरे जन्म का स्वागत किया। दसवां दिन होने पर मेरा नाम 'महाश्वेता' ठीक ही रक्खा।

पृष्ठ २१—साहं पितृभवने······· अस्थजिघ्रम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—बालतता—छोटा होने के कारण। कल मधुर प्रलापिनी—मधुर शब्द करने वाली। वीणा—इव—वीणा के समान। अङ्कात्—अंकम्—एक गोद से दूसरी गोद में। संचरन्ती—जाती हुई। वैशवम्—वचपन अतिनीतवती—बिताया। वपुषि—शरीर में। मे—मेरा। पदम्—प्रवेश। सकलजीवसोकहृदयानन्ददायकेपु—सम्पूर्ण जीव लोक के हृदय को आनन्द देने वाले। मधुमासदिवसपु—वसन्त के दिना में। अम्वया समय माता के साथ स्नातुम् (स्ना धातु तुमुन प्रत्यय) स्नान के लिये। अभ्यागमम्—आई। विचरन्ती—घूमती हुई। वनानिलेन—(वनस्य अनिलेन षष्ठी तत्पुरुष)—वन की हवा से। उपनीतम्—लाई हुई। अभिभूत. अन्य कुसुमानां परिमलः येन तम् अभिभूतान्य कुसुमपरिमलम्—दूसरे सभी फूलों की गन्ध को अभिभूत करने वाली। अनाघ्रात पूर्वम्—पहले कभी नहीं सूंघी हुई। अस्शजिघ्रम्—सूंघा। कुतः+अयम्—यह कहां से आई। उपारूढ़ कुतूहला—कुतूहल से युक्त अतिचित्—कुछ पदानि—पग। कामम्—इव+अपरम्—दूसरे कामदेव के समान। सवयसा सह—साथी के साथ। आगतम्—आये हुये।

अर्थ—पिता के भवन में छोटी होने के कारण वीणा के समान मधुर शब्द करने वाली गन्धर्वों के एक गोद से दूसरी गोद में जाती हुई मैंने वचपन को व्यतीत किया। क्रमशः मेरे शरीर में नवीन यौवन ने प्रवेश किया। इसके पश्चात एक वार सम्पूर्ण जीव लोक के हृदय को आनन्द देने वाले वसन्त के दिनों में मैं माता के साथ इस अच्छोद नामक तालाव से स्नान करने के लिए आई। यहां सुन्दर किनार के पेड़ों के नीचे सखियों के साथ घूमती हुई मैंने तुरन्त ही

वन की वायु द्वारा लाई हुई सभी प्रकार के दूसरे फूलों की सुगन्ध को अभिभूत करने वाली पहले कभी न सूंघी हुई फूल की गन्ध को सूंघा।

कुतोऽयम् ....अनायत अनंगः।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—कर्णावतंसीकृताम् (कर्णयोः अवतंसी कृता; षष्ठी तत्पुरुष)—कान में आभूषण के रूप में धारण की हुई। अद्राक्षम्—देखा। परिमलः—सुगन्ध। विस्मृत निमेषेण—(विस्मृतः निमेषः ययोः तेन; बहुव्रीहि)—अपलक। अतिचिरम्—बहुत देर तक। रूपैक पक्षपातिना—केवल रूप का पक्षपात करने वाला। कुसुमायुधेन कामदेव द्वारा। अशेषजनपूजनीय—सम्पूर्ण मनुष्यों द्वारा पूजनीय। अकरवम्—किया। कृत प्रणामायाम्—प्रणाम कर चुकने वाली। मद्विकारदर्शनाय हृतधैर्यन्—मेरे शरीर पर होने वाले विकार को देख कर धैर्य रहित। तरलताम्—चचला। अनयत्—प्राप्त कराया अनंगः—कामदेव।

अर्थ—'यह सुगन्ध कहां से आ रही है' इस कुतूहल के उत्पन्न हो जाने से मैं कुछ कदम चलकर दूसरे कामदेव के समान अत्यन्त मनोहर आकृति वाले मुनि कुमार को दूसरे साथी तपस्वीकुमार के साथ आया हुआ देखा। उसके द्वारा कानों पर आभूषण के समान धारण की हुई फूल की मंजरी को देखा। 'इसी की यह सुगन्ध है' ऐसा निश्चय करके अपलक नेत्रों से उस तपस्वीकुमार को देखती हुई मैं एक मात्र रूप का ही पक्षपात करने वाले नव यौवन में सुलभ कामदेव द्वारा पराधीन कर ली गई। यह लाति सभी मनुष्यों द्वारा पूजनीय हैं' ऐसा विचार करके मैंने उसे प्रणाम किया। मेरे प्रणाम कर चुकने पर मेरे विकार को देखकर धैर्य रहित हुये उस मुनि कुमार को भी कामदेव ने चंचल बना दिया।

पृष्ठ २१-२२ अथ च उपसृत्य ....श्रूयताम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उपसृत्य समीप जाकर। सहचरम् साथी अपृच्छम्—पूछा। अभिधानः—नाम। नाम्नः—नाम के। तरोः—पेड़ की अवतसीकृता—कान का आभूषण बना लिया। इषत्—थोड़ा। विहस्य—हँस कर। श्रूयताम् - सुनो।

अर्थ—इसके पश्चात इसके साथी मुनि कुमार को प्रणाम करके पूछा—हे भगवन् ! इसका क्या नाम है ? यह तपोधन युवा किसके पुत्र हैं ? किस नाम के पेड़ के फूल की मजरी को इसने कान पर आभूषण रूप में धारण किया है ? उसके कुछ हंसकर मुझे कहा हे बालिका ! ऐमा पूछने का क्या प्रयोजन है ? यदि उत्सुकता है तो सुनो ।

अस्ति सकल भुवन········कर्णपूरो कृतवान इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण— सकल भुवन प्रख्यात कीर्ति (सकलेमुवने प्रख्याता कीर्ति यस्य सः बहुव्रीहि)– सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध कीर्ति वाला । दिव्यलोक निवासी—दिव्य लोक में निवास करने वाला । सकललोक हृदया: नन्दकरम्—सभी लोगों के हृदय को आनन्दित करने वाला । अतिशयित नलकवरम् (अतिशयित। नलकुवरः येन तत् बहुव्रीहि समास)—नल कुवर के रूप को नीचा दिखाने वाला । नलकुवर—कुवेर के पुत्र का नाम है । आत्मजः—पुत्र । अम्बिकापीतम्—शिवजी को । कैलास गतम्—कैलाश पर्वत पर रहने वाले । उपासितुम्—उपासना करने के लिये । नन्दनवन - इन्द्र के उद्यान का नाम नन्दनवन है । गच्छत्—जाते हुए । वनदेवताया—वन देवता के द्वारा । समर्पिताम्—अर्पित की हुई । पारिजातकुमुममंजरीम्—(पारिजातस्य कुसुममंजरीम षष्ठी तत्पुरुष ससास)–कल्प वृक्ष के फल की मंजरीं के । कर्णपूरी कृतवान्—कानों का आभूषण बनाया है ।

अर्थ—सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध यश वाले दिव्यलोक के निवासी श्वेतकेतु नामक महामुनि हैं । उनका सम्पूर्ण लोक के हृदय को आनन्दित करने वाले, नलकुवर के रूप का अतिक्रमण करने वाला रूप था । उन्हीं के पुत्र यह पुण्डरीक हैं । यह आज चतुर्दशी है इसलिये कैलाश पर्वत पर निवास करने वाले भगवान शिव की उपासना के लिये नन्दन वन के समीप से जाते हुए इन्होंने वन देवता द्वारा अर्पित की हुई पारिजात वृक्ष के फूल की मंजरी को अपने कान का आभूषण बना रखा हैं ।

इत्युक्तवति:·········नाज्ञासीत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—इति + उक्तवति—ऐसा कहने पर । कुतुहालेनि

—हे कुतूहल वाली। प्रश्नायासेन (प्रश्नानां आयासेन षष्ठी तत्पुरुष समास) —प्रश्नों के परिश्रम से। रूचित सुरचित सुरभिपरिमला—यदि उसकी सुगन्ध अच्छी लगती है। गृह्यताम—ग्रहण कीजिए। समुपसृत्य—समीप जाकर। श्रवणात् कान से। अपनीय हटाकर। मदिये—मेरे। श्रवणपूरे—कान पर। ताम् अकरोत् - उसे रख दिया। तदानीम् - उस समय। मतकपोल-स्पर्श सुखेन (मतकपोलस्य: य: स्पर्श: तस्व सुखेन षष्ठी तत्पुरुष)—मेरे कपोलों को छूने के सुख से। तरली कृतागुलि: तरलीकृता अंगुली यस्य: स. बहुव्रीहि समास (चचल अंगुली वाला। करतलात् गलिताम् हाथों से गिरी हुई। अक्ष मालाम्—रुद्राक्ष की माला को। न आज्ञासीत्-नहीं जाना।

अर्थ—उसके ऐसा कहने पर उस तपस्वी युवक ने कहा हे कुतूहलिनि! इन प्रश्नों को करने से क्या लाभ? यदि तुम्हें इसकी सुगन्ध अच्छी लगती है तो ग्रहण करो। ऐसा कहकर समीप जाकर अपने कान पर से उसे उतार कर मेरे कानों पर उसे रख दिया। उस समय मेरे गालों के स्पर्श सुख से उस की अंगुली कांपने लगी इसलिये अपने हाथ से गिरती हुई अक्षमाला को वह नहीं जान सका।

अपाहृताम् ······ स्नांतु उदचलभ्।

शब्दार्थं तथा व्याकरण—असमप्राप्यसेव भूतलाम्—पृथ्वी पर गिरने से पहले ही। गृहीत्वा–ग्रहण करके। सक्षीलम्–आनन्द के साथ। कण्ठामरणता— गले का आभूषण। अनयम्—ले गया। छात्रग्राहिणी छत्र ग्रहण करने वाली। भर्तृद्वारिके—हे राजकुमारी। स्नाता—स्नान कर चुकी। प्रत्यासीदति–निकट आ रहा है। क्रियताम्—कीजिये। मदजन विधि–स्नान की क्रिया। तन्मुखात् (तस्य मुखात् षष्ठी तत्पुरुष समास) उसके मुख पर से। अतिकृच्छ्रेण–बड़े कष्ट से। उनचलम्–चला।

अर्थ—इसके पश्चात् उसके पृथ्वी पर गिरने से पहले ही मैंने उसे उठाकर कान का आभूषण बना लिया। इस प्रकार विलम्ब होने पर छत्रग्राहिणी ने मुझ से कहा–हे राजकुमारी! महारानी स्नान कर चुकी है। घर जाने का समय हो रहा है। इसलिये स्नान आदि कार्य कर लीजिए। तब मैं उसके मुख पर से बड़े कष्ट के साथ दृष्टि हटा कर स्नान करने के लिये चल पड़ी।

उच्चलितायाम्…………विगत चेमनस्त्वम् इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उच्चलिताम्—चल पढ़ने पर । मुनिदारकः—मुनि पुत्र । तथाविधम्—वैसे । धैर्यस्खलितम (धैर्यस्य स्खलितम् षष्ठी तत्पुरुष)—धैर्य के नाश को । आलोक्य —देख कर । किंचित—कुछ । प्रकटित-प्रणय-कोपः—य (प्रकटित प्रणय कोपः येन सः बहुव्रीहि समास)—प्रेम का क्रोध प्रगट करने वाले । नैतदनुरुपम् (न+एतद्+अनुरुपम्)—यह उचित नहीं । क्षुद्र क्षुण्णः (क्षुद्रश्चासौ जनस्य तेन क्षुण्णः तृतीया तत्पुरुष समास)—क्षुद्र पुरुषों द्वारा अपनाया जाने वाला । एषः—यह धैर्यधनी (धैर्य एव धनं येषां ते बहुव्रीहि समास) धैर्य ही जिनका धन हैं । साधवः—सज्जन पुरुष । गलिताम् गिरी हुई । लक्ष्यसि — देखते हो । विगत चेतनः (विगता चेतना यस्य सः बहुव्रीहि समास)—चेतनाहीन ।

अर्थ—मेरे चले जाने पर उस दूसरे मुनि कुमार ने उसके धैर्य के नाश को देखकर कुछ प्रेम पूर्ण क्रोध प्रकट करते हुए कहा —मित्र पुण्डरीक ! यह आप के योग्य नहीं हैं । वह मार्ग तुच्छ पुरुषों द्वारा दूषित हैं । साधु पुरुष धैर्य-शाली होते है । क्या तुमने अपने हाथ से गिरती हुई अक्षमाला को नहीं देखा हो ! तु तो चेतनाहीन है ।

इत्येवम्………सरः अवातरम् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—इति+एवम्—इस प्रकार अभिधीयमाना—कहा जाता हुआ । उपजातलज्जः (उपजातः लज्जा यस्य सः बहुव्रीहि समास —जिसे लज्जा उत्पन्न हो गई है । प्रत्यावादीत्—उत्तर दिया । अन्यथा—दूसरे प्रकार से । सम्भावयसि -समझते हो । दुर्विनीतायाः—विनयहीन के । मर्षयामि—क्षमा करता हूं, सहन करता हूं । अक्षमाला ग्रहणापराधम्) अक्ष-मालाया ग्रहणस्य अपराधम् षष्ठी तत्पुरुष समास)—अक्षमाला को ग्रहण करने का अपराध । अलीककोपकान्तेन अलीकः त कोपः तेन कान्तेन तृतीया तत्पुरुष समास) —झूठे क्रोध में सुशोभित । मुखेन्दुना—चन्द्रमा जैसे मुख से । अदत्वा—बिना दिये हुए । पदात् पदमपि—एक पग भी । आत्मकण्ठात् (आत्मनः कण्ठात् षष्ठी तत्पुरुष समास) अपने गले से । एकावलीम्—माला । मन-

मुखासक्तदृष्टे: (मतमुखे आसक्ता दृष्टि यस्य तस्य)—मेरे मुख पर आसक्त... वाले। प्रसारित—फैलाये हुए। निधाय—रख कर। सर: स्नातुम्—... में स्नान के लिये। अवातरम्—उतरी।

अर्थ—उसके द्वारा उस प्रकार कहे जाने पर वह कुछ लज्जित होता सा बोला—'मित्र कपिंजल! मुझे गलत मत समझो। मैं दुष्टा के अ... को ग्रहण करने का अपराध क्षमा नहीं करूंगा।' ऐसा कह कर उस... क्रोध से सुशोभित चन्द्रमा जैसे मुख से मुझे कहा 'चंचल बालिका! अक्षमाला को लौटाये बिना तुम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती हो।... को सुनकर मैंने अपने गले से अक्षमाला उतार कर कहा—हे भगवान्! ... माला ग्रहण कीजिये।' इस प्रकार मेरे मुख पर दृष्टि लगाये हुए उसके... हाथ में माला रखकर तालाब में स्नान करने के लिए उतरी।

उत्थाय च कथमपि.......... अत्यवाहयम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—नीयमाना—ले आई जाती हुई। चिन्तय... सोचती हुई अम्बयासमम्—माता के साथ। अगमिषम्—चली गई।... न्तपुरम् (कन्याया: अन्त: पुरम् षष्ठी तत्पुरुष समास) राजकुमारी का म... तत: प्रभृति तब से तद्विरह विधुर (तस्य विरहेन विधुर—तृतीया त... समास)—उनके विरह में दुखी। सर्वव्यापारान्—सभी कार्यों को। उत्सृ... छोड़कर। गवाक्षनिक्षिप्तमुखी (गवाक्षे निक्षिप्तम् मुख यया सा बहुव्रीहि स... —खिड़की पर मुख लगाए हुए। कण्ठेन+उद्‌हन्ती—गले में धारण... हुई। अत्यवाहयम्—व्यतीत किया।

अर्थ—उठकर किसी प्रकार सखियों द्वारा ले जाई जाती हुई उसी... ध्यान करती हुई मैं माता जी के साथ अपने भवन चली गई। जाकर... कन्याओं के अन्त:पुर में प्रवेश करके, तब से उसके विरह में व्याकुल... सभी सखियों को छोड़कर अकेली ही खिड़की की ओर मुख करके उसी... देखती हुई तथा उसी अक्षमाला को कण्ठ में धारण करती हुई मैंने दि... व्यतीत किया।

अथलोहितायति..............प्राविशायम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—लोहितायति—लाल होने पर। समागत...

कर । अन्यतम:---दो में से एक । द्वारि---द्वार पर । तिष्ठति---खड़ा है । अर्थयितुम्-मांगने के लिये । समाहूय-बुलाकर । प्रवेशयताम्-प्रवेश कराओ । इति+आदिश्य---ऐसा आदेश देकर । प्राहिणवम्-भेजा ।

अर्थ---इसके पश्चात् सूर्य के लाल होने पर छत्र धारण करने वाली दासी आकर कहा-'राजकुमारी ! उन दोनों में से एक मुनि कुमार द्वार पर खड़ा है और कहता है कि अक्षमाला लेने आया हूं ।' मैंने उसको बुलाकर कंचुकी को कहा कि जाओ प्रवेश कराओ । ऐसा आदेश देकर भेज दिया ।

अथ मुहूर्तमिव ...... समुपाविशम् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण अनुरूपम्-समान रूप वाले । कृतप्रणामा (कृत प्रणाम: यया सा बहुव्रीहि समास) प्रणाम कर लेने वाली । उपाहरम् दिया । उपविष्टस्य बैठे हुए । प्रक्षाल्य---धोकर । उपमृज्य---पोछकर । उत्तरीयांशुकाञ्चलेन---उत्तरीय वस्त्र के आँचल से । अव्यवधानायाम्---बिना कुछ बिछाए । भूमावेव (भूमौ+एव)-पृथ्वी पर ही । तस्य अन्तिके---उसके समीप । समुपाविशमं---बैठ गई ।

अर्थ---इसके पश्चात् घड़ी भर में पुण्डरीक जैसे उनके मित्र मुनि कुमार कपिंजल को आते हुए देखा । उठ कर प्रणाम करके मैंने स्वयं उसको बैठने के लिए आसन दिया । उसके बैठने पर मैंने उसके पैर धोकर तथा दुपट्टे से पोंछ कर उसके समीप बिना कुछ बिछाए भूमि पर ही बैठ गई ।

अथ मुहूर्तमिव ....प्रवेशम् अगमम ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण मत्समीपोपविष्टायाम्---मेरे समीप बैठी हुई । मयि चक्षुः अपातयत्---दृष्टि डाली । विदिताभिप्राया (विदित: अभिप्राय: यया सा बहुव्रीहि समास) अभिप्राय को जान लेने वाली । अव्यतिरिक्ता---अभिन्न । अस्मत्+शरीरात्---हमारे शरीर से । अभिधीयताम्---कहिये । इति अवोचम---ऐसा कहा । किम्+आरब्धम्---क्या आरम्भ किया । दैवेन---भाग्य से । वाग+एव---वाणी ही । त्रपया-लज्जा से । सुहृदसव: (सुहृदस्य+असव: षष्ठी तत्पुरुष समास)---मित्र के प्राणों को । समक्षम्-सामने । अभिहित: कहा । उपजातमन्यु: (उपजात: मन्यु: यस्य सः बहुव्रीहि समास)---जिसे क्रोध

उत्पन्न हो गया आगमम्—चला गया ।

अर्थ—इसके वाद मुहूर्त भर ठहर कर उसने मेरे समीप बैठी हुई पर दृष्टि डाली । मैंने उसके अभिप्राय: का जानते हुए कहा—भगः मुझ से अभिन्न है । इसलिये निर्भय होकर कहिए । मेरे द्वारा ऐसा कपिंजल ने कहा । 'हे राजपुत्री ! क्या कहूँ ! न मालूम भाग्य ने आरम्भ किया । लज्जा के कारण मेरी वाणी नहीं खुलती है । यही कि मित्र के प्राणों की रक्षा कीजिये । मैंने आपके सामने ही उसे बड़ी पूर्वक डांटा था ।' उसको ऐसा कहकर तथा क्रोध के कारण उस दूसरे स्थान पर चला गया था ।

अपगतायां भवत्याम्·········समापरेत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अपगतायाम्—चले जाने पर । किम यह क्या । इदानीम्—अब । आचरति—करता है । संजातवितर्क वितर्क यस्य सः बहुव्रीहि समास)–जिसे कल्पना हो गई । प्रतिनिवृ कर । विटपान्तरित विग्रहः (पिटपेपु अन्तिरितः—विग्रहः येन सः समास)–वृक्षों की ओट में शरीर को छिपाने वाला । व्यलोकयन्- नअद्राक्षम्–नहीं देखा । तस्य+अदर्शनेन—उसके न दीखने से । दुः दुखी होता हुआ । मनसि+अचिन्तयम्–मन से सोचा । कदाचित—: धैर्य स्खलन विलक्षणः धैर्यस्य स्खलने न यः विलक्षः बहुव्रीहि समा के नष्ट हो जाने से पीडित । समाचरेत–कर ले ।

अर्थ–आपके चले जाने पर घड़ी भर ठहर कर अकेला यह क्य है यह जानने के लिये लोट कर मैं पेड़ों की ओट में छिपकर उस ओ लगा । जब मैंने उसे वहां नहीं देखा तब उसके अदृश्य होने से दुखी मैंने मन में सोचा—"कहीं संयम टूट जाने से दुखी यह कोई अनुचित कर बैठे ।

तत न युक्तम् ·· ···तमहम द्राक्षम् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण एनम् इसको । इति+अवधा निश्चय करके । अन्वेषमाण—खोजता हुआ । इत+ततः इधर दत्तदृष्टिः (दतः दृष्टिः येन सः बहुव्रीहि समास) दृष्टि डालते हुए

माणः—देखता हुआ। सुचिरम्— बहुत देर तक। व्यचरम्—विचरण किया। सर: समीपवर्तिनी—तालाब के समीप। लतागहने—घनी लताओं से। व्युपरत सकल व्यापार तथा—सभी कार्यों से विमुख। अवस्थितम्—बैठा हुआ। मन्माथावेशस्य—कामदेव की आधीनता के। परकोटिम—अन्तिम अवस्था की करतलनिर्हितवामकपोलस (करतले निहीत: वाम कपोल: येन: स: बहुव्रीहि समास)—हथेली पर बांये गाल को रक्खे हुये। शिलात—लोपविष्टाम् (शिला-तलेउपविष्टाम्)—शिला तल पर बैठे हुए। अद्राक्षम्—देखा।

अर्थ—इसलिये इसे अकेले छोडना उचित नहीं हैं ऐसा निश्चय करके इधर उधर दृष्ट डालकर अच्छी तरह खोजता हुआ पेड़ों और घनी लताओं को देखता हुआ बहुत समय तक घूमता रहा। तब तालाब के समीप बने कुञ्ज के बीच में उसे सभी कार्य को छोड़कर चित्र पर लिखे हुये के समान स्थित कामदशा की अन्तिम सीमा को प्राप्त, हथेली पर बांया कपोल रखकर शिला-तल पर बैठे हुये देखा।

उपसृत्य··············इति अब्रवम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उपसृत्य—समीप जाकर। तस्मिन+एव—उसी शिलातलैक पार्श्वे—शिलातल के एक भाग में। अंसदेशावसक्तपाणिः (अंशदेशे अवसक्त: पाणिः येन स: (बहुव्रीहि समास)—कन्धे पर हाथ रखे हुये। गुरुभि: +उपिष्टम्—गुरुओं ने उपदेश दिया है, उत—अथवा। मोक्ष—प्राप्तिनुक्ति +इयम् मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। एतत्—युक्तम्—यह उचित है। भवत:—आपके लिये। मनसा+अपि—मन से भी। अवलवय—सहारा लेकर। निर्भर्त्स यंताम्—हटाओ। दुराकार—बुरी आकृति वाला।

अर्थ—समीप जाकर उसी शिलातल के एक भाग में बैठकर कन्धे पर हाथ रखकर कहा 'मित्र पुण्डरीक ! बताओ कि क्या गुरुजनों ने यही उपदेश दिया था ?' अथवा क्या यही धर्म शास्त्रों में पढ़ा था ? अथवा क्या यही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है ? क्या तुम्हें मन मे भी ऐसा सोचना उचित है ? धैर्य धारण करके इस दुष्ट काम भाव को दूर हटाओ इस प्रकार बोला।

इत्येव वदव एव··········करोतु भवान इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—इति • एवम्—इस प्रकार। वदतएव—कहते हुए ही। आक्षिप्य—काटकर। करतलेन—हाथ से। बहुना उक्तेन—बहुत कहने से। आशीविषविषवेगविषमाणाम् (आशी विषस्य यः विषवेगः तेन विषमाणाम्)—सांप के विष वेग के समान प्रभावशाली। कुसुमचाप सायकानाम् (कुसुम चापस्य सायकानाम्, षष्ठी तत्पुरुष समास)—कामदेव के बाणों के। गोचरे—विषय में। उपदिश्यते—उपदेश दिया जाता है। वा+अन्यः—अथवा, दूसरा, त्वत्+समः—तुम्हारे समान। निवारयितुम्—हटाना रोकना। प्राणिभि—जीवित हूं। मदन सतापस्य—काम के दुःख का। प्राप्तकालम्—उचित।

अर्थ—इस प्रकार बोलते हुए मेरी बात को काटकर अपने हाथ से मेरा हाथ पकड़कर वह बोला—हे मित्र! अधिक बोलने से क्या लाभ? तुम सब प्रकार से स्वस्थ हो क्योंकि सांप के विष के समान अत्यन्त भयंकर कामदेव के बाणों के लक्ष्य नहीं बने हो। इसलिये दूसरे को सुखपूर्वक उपदेश देते हो। लेकिन मेरा उपदेश ग्रहण करने का समय बीत गया है। इस समय तुम्हारे अतिरिक्त संसार में कौन मेरा अपना है। क्या करूं मैं अपने आपको रोक नहीं सकता हूं। मैं चाहता हूं कि जब तक जीवित हूं तब तक तुम इस दुख को दूर करने का उपाय करो। इस सम्बन्ध में जो उचित है वह आप करें।

पृष्ठ २६—एवम उक्तोऽहम् ······· तूष्णीमभवत।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अतिभूनिम्—बहुत दूर। निवर्तयितुम्—लौटना अकालान्तरक्षम्—विलम्ब को सहन करने मे असमर्थ। मदन विकारः—काम वासना। रक्षणीया—रक्षा करनी चाहिए। अतिगर्हितेन—बहुत निन्दनीय। अकृत्येन+अपि—कर्म से भी। सुहृदसून (सुहृदः असून षष्ठी तत्पुरुष)—मित्रों के प्राणों को। मन्यते—मानते हैं। आपतीतम्—अचानक आ पड़ने वाला। सकाशम्—समीप। आवेदयामि—बताता हूं। कदाचित शायद। अनुचित—व्यवहार-प्रवृत्तम् (संजाता लज्जायस्य सः)—जिसे लज्जा हो गई। निवारयेत् —रोके। अनिवेद्य+एव—बिना बताये ही। सव्याजम्—बहाने से। उपागतः +अहम्—मैं आया हूं अवस्थिते—हो जाने पर अवसरप्राप्तम्—उचित भवति—आप

इति+अभिधाय—ऐसा कर कर, कथ्यति—कहेगी, तूष्णीम्+अभवत् –मौन हो गया, अतिह्रेवणम्—बहुत लज्जा।

अर्थ—इस प्रकार कहने पर मैंने सोचा—यह बहुत आगे बढ़ गया है इसलिये रोका नहीं जा सकता है। इसका यह मदन विकार विलम्ब को सहन नहीं कर सकता है। इसके प्राणों की तो रक्षा करनी ही चाहिए। सज्जन पुरुष ऐसा मानते हैं कि अत्यन्त निन्दित कार्य करने पर भी मित्र की रक्षा करनी चाहिए। इसलिये इस आये हुए अत्यन्त लज्जा जनक कार्य का उपाय भी अवश्य करना चाहिए। क्या करूं ? दूसरा कौन उपाय है ? उसी के समीप जाता है। उसे इस दशा का ज्ञान कराता हूं। ऐसा सोचकर मैं शायद मुझे इस अनुचित कार्य में प्रवृत्त जानकर लज्जित होकर मैं उसे बिना बताये हा किसी बहाने से उस स्थान से उटकर आपके समीप आ गया हूं। ऐसी दशा में जो उचित हो वह आप कर सकती है। ऐसा कहकर वह यह सोच कर कि यह क्या कहेगी, मेरे मुख पर दृष्टि लगाये हुये चुप हो गया।

पृष्ठ २७–अहतुवत् ······ प्रययौ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण आकर्न्य—सुनकर। दिष्टया—सौभाग्य से। अनङ्ग—कामदेव। माम् + इव–मेरे समान। अनुबध्नाति–सकता है। सर्वानन्दानाम—सब आनन्दों में। वर्तमाना—रहती हुई। ईत्यभूते–ऐसा होने पर प्रतिपतव्यम्—निर्णय करना। विचायन्ति—विचार करती हुई। आसम्·थी। ससंभ्रमत्—वेग के साथ। प्रविश्य – प्रवेश करके। भर्तृदारिके—हे राजकुमारी परिजनात्—सेवकों से। उपलभ्य—जानकर। आप्ता—आई है। श्रुत्वा—सुन कर। जनसंमर्दभीरु (जननां ससंदः तस्मात भीरु)– लोगों की भीड़ से भयभीत। सत्वरम्—शीघ्र। अस्त उप गच्छ्रति–अस्ताचल को जाते हैं। दिवाकर —सूर्य। सुहृत्प्राणरक्षादक्षिणार्थम्—मित्र के प्राणों की रक्षा की भेंट के लिये उपरचित:+अंजाल—हाथ जोड़ता हूं। प्रतिवचनकाल—उत्तर का समय। अप्रीक्ष्य—बिना प्रतीक्षा किये। प्रययौ—चल पड़ा।

अर्थ—मैंने यह सुनकर ऐसा सोचती हुई कि सौभाग्य से यह कामदेव

मेरे समान उसे भी सता रहा है बहुत आनन्दित होकर यह विचार करने लगी कि ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए। इस बीच प्रतिहारी ने शीघ्रता पूर्वक प्रवेश करके कहा—राजकुमारी ! सेवकों से यह जानकर कि आपका शरीर अस्वस्थ हैं, महादेवी जी आ रही है। यह सुनकर मनुष्यों की भीड़भाड़ से भयभीत होने वाले कपिजल ने शीघ्र उठकर कहा 'हे राजकुमारी ! भगवान् सूर्य अस्त हो रहे हैं। इसलिये जाता हुं। मैं मित्र के प्राणों की रक्षा के लिये यह हाथ जोड़ रहा हूं। ऐसा कहकर उत्तर की प्रतीक्षा न करके चला गया।

अम्बातु………अधर्मो महान्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अम्बा—माता। आगत्य—आकर। सुचिरम्—बहुत देर तक। स्थित्वा—ठहर कर। अयासीत्—चली गयी। अस्तम् उपगते—अस्त हो जाने पर। भगवति सवितरि—भगवान सूर्य के। किंकर्तव्यतामूढ़ा-क्या करू क्या न करूं इसे न जानने वाली। अपृच्छम्—पूछा। दृढम् + आकुलम्—बहुत व्याकुल। उपदिशतु—बताओं। साम्प्रत—उचित। त्वतमक्षम्—तुम्हारे सामने। अभिधाय—कहकर। गतः—चला गया। विहाय—छोड़कर। विसृज्य—त्याग कर। अचिन्तयित्वा—न सोचकर। जनापवादम्—लोगों की बदनामी। अतिक्रम्य—लांघकर। अनुज्ञाता (न अनुज्ञातानम् तत्पुरुष समास) बिना अनुमति लिये। अननुमोदिता—बिना समर्थन के। उपगम्य—समीप जाकर। पाणिम् ग्राहयामि—हाथ पकड़वाऊं विवाह कराऊं। जनातिक्रमात् (गुरुजनानाम् अतिक्रमात् षष्ठी तत्पुरुष) गुरुजनों का अपमान करने के कारण।

अर्थ—मेरी माता तो मेरे समीप आकर बहुत देर तक ठहर कर अपने भवन को चली गई। उनके चले जाने पर भगवान सूर्य के अस्त हो जाने पर अपना कर्त्तव्य न समझ सकने के कारण मैंने तरलिका से पूछा—हे तरलिका क्या तुम मेरे अत्यन्त व्याकुल हृदय को नहीं देखती हो ? अब मेरे लिये जो उचित है वह मुझे बताओ। कपिंजल तुम्हारे सामने ही इस प्रकार कह कर गया है। यदि विनय को छोड़कर लज्जा को त्यागकर बदनामी का विचार न करके सदाचार को भंग करके बिना माता और पिता की अनुमति प्राप्त

किये विना ही स्वयं जाकर विवाह कर लूं तो गुरुजनों का अपमान करने के कारण बड़ा पाप होगा।

पृष्ठ २८—अथ धर्मानुरोधेन.........यामिनी।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—धर्मानुरोधेन (धर्मस्य अनुरोधेन षष्ठी तत्पुरुष समास)—धर्म के अनुरोध से, इतर पक्षम्—दूसरा पक्ष, अंगीकरोमि—स्वीकार करता हुं, आगतस्य:—आये हुए, प्रणयभंग—प्रेम का भंग, अपरम्—दूसरा, कदाचित—कभी, मतकृतात्—मेरे कारण आशाभगात (आशाया+भगात् षष्ठी तत्पुरुष समास)—आशा के नष्ट हो जाने से, प्राण विपत्ति,—प्राणों पर संकट, उपजायते—होता है, मुनिजनवधजनितम्—मुनि कुमार के वध के कारण होने वाला, महत्—बड़ा, पातकम्—पाप, इति+एवम्—इस प्रकार, उच्चारयन्त्याम्—उच्चारण करते हुए, अभिनवोदितेन—नवीन उदित हुये, रजनिकर विम्बेन रजनिकरस्य विम्बेन षष्ठी तत्पुरुष)—चन्द्र मण्डल से, रमणीयताम्—सुन्दरता, अनीयत—प्राप्त हुई, यामिनी रात्रि।

अर्थ—यदि धर्म के अनुरोध से दूसरा मार्ग स्वीकार करती हूं तो सर्वप्रथम स्वयं आये हुये कपिंजल के प्रेम की उपेक्षा होगी। दूसरा यदि मुझ से लगी हुई आशा टूट जाने के कारण उस व्यक्ति के प्राणों पर संकट आ जाये तो मुनि कुमार के वध का बड़ा भारी पाप लगेगा। मेरे ऐसा कहते ही चन्द्र-मण्डल के प्रकट हो जाने के कारण रात्रि बड़ी सुन्दर हो गई।

तदानीम्........ उत्क्षिप्तं दैवेन इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—दुर्विषहमनवेदनातुराम् असह्य काम पीड़ा के कारण व्याकुल, तथा विधम्—वैसे, विलोकयन्ती—देखती हुई, निमीलित-लोचनम्—बन्द आंखों वाली, अकार्षीत—कर दिया, सम्भ्रान्ता—घबराई हुई, उपनीताभि—लायी हुई, चन्दन चर्चाभिः—चन्दन के लेप से, तालवृन्तानिलै:—ताड़ के पंखे की हवा, लब्धसंज्ञाम्—होश में आई हुई, प्रसीद—प्रसन्न होइये प्रेषय—भेजिये, हृदयदायितम्—प्राण प्रिय को, उत्तिष्ठः—उठिये, वादिनीम्—बोलने वाली को, सम्भावयामि—सम्मानित करती हूं, अभिगमनेन—जाकर। अभिदधाना—कहती हुई। अवलम्ब्य—सहारा लेकर। उदतिष्ठम् उठी। उच्चलिताया[illegible] ... दुर्निमित्तनिवेदकम्—अपशकुन

का सूचक । अस्पन्दत—फड़की । दक्षिणं चक्षुः—दाहिनी आंख । उत्क्षिप्तम्
डाला । फेंका । दैवेन—भाग्य ने ।

अर्थ—उस समय असह्य काम पीड़ा से व्याकुल तथा वैसे चन्द्रमण्डल
देखते हुये मुझे मेरी बेहोशी ने आंखे बन्द करदी । तब घबरायी हुई तरलि
ने बड़ी शीघ्रता पूर्वक लाये हुए चन्दन के लेप के द्वारा तथा ताड़ के पंखे
हवा के द्वारा मुझे होश में लाकर हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली 'हे र
कुमारी ! लज्जित होने से अथवा गुरुजनों का विचार करने से क्या ला
आप प्रसन्न होइये और मुझे भेजिये । मैं आपके प्राण प्रिय को ले आती
अथवा उठिये, स्वयं वहाँ जाइये । 'इस प्रकार कहने वाली उस तरलि
मैंने कहा—'उठ, मैं स्वयं जाकर अपने प्राणप्रिय स्वामी को सम्मानित
हूं ।' ऐसा कहती हुई मैं किसी प्रकार उसी का सहारा लेकर उठ खड़ी
मेरे चलते ही अशुभ की सूचना देने के लिये मेरी दाहिनी आंख फड़कने
इससे भयभीत होकर सोचने लगी कि भाग्य ने यह कोई दूसरी आपत्ति मु
डाल दी है ।

पृष्ठ २९-अथ च·········अतित्वरितम् अगच्छम् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—गृहीत विविध कुसुमताम्बूलांगरागया (गृ
विविध कुसुमा न ताम्बूलानि अंगरागश्च यया तया बहुव्रीहि समास)
प्रकार के फूल पान तथा अंगराग ग्रहण किये हुए: रक्तांशुकेन—लाल
वस्त्र से, कृत शिरोवगुण्ठनया (कृतम् अवगुण्ठनम् तथा बहुव्रीहि)—सि
तके हुए, केनचित—किसी, अनुपलक्ष्यमाणा—न देखी जाती हुई, प्रमद
द्वारेण (प्रमद वनस्य पक्ष द्वारेण षष्ठी तत्पुरुष)—प्रमद वन के पिछले
निर्गत्य-निकल कर, आलापैः—वार्तालाप के साथ, अभ्युपागमम्—
सरसः—तालाब के, रुदितध्वनिम् (रुदितस्य ध्वनिम् षष्ठी तत्पु०)—
आवाज, विप्रकर्षात्--दूरी के कारण । न + अतिव्यक्तम्-अस्पष्ट । उपा
—सुना । दक्षिणे क्षण स्फुरणेन (दक्षिण इक्षणस्य स्फुरणम् तेन षष्ठी
—दाहिनी आंख के फड़कने से । आहितशंका—शंका से भरी हुई ।
दुखी । अन्तरात्मना: हृदय से । अभिदधाना--कहती हुई । तदभिमुख

ओर मुख करके, अतित्वरितम्—बहुत शीघ्र।

अर्थ—उसके पश्चात् अनेक प्रकार के फूल ताम्बूल तथा अंगराग ग्रहण की हुई तरलिका के साथ लाल रेशमी वस्त्र से सिर ढके हुए तथा किसी भी अपने सेवकों द्वारा न देखी गई मैं प्रमदवन के पिछले द्वार से निकल कर उस समय के योग्य वार्तालाप के साथ उस स्थान पर पहुंच गई। वहाँ उसी तालाब के पश्चिमी तट पर किसी पुरुष के रोने की आवाज को सुना जो दूरी के कारण अधिक स्पष्ट नहीं हो रही थी। दाहिनी आंख के फड़कने के कारण पहले ही मन में भय भर जाने के कारण दुखी हृदय से तरलिका! यह क्या है' इस प्रकार भय पूर्वक कहती हुई उसकी ओर शीघ्रतापूर्वक गई।

अथ निशीथप्रभावात् ········अश्रौषम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—निशीथप्रभावात्—रात्रि के प्रभाव के कारण। विभाव्यमानस्वरम्—पहचानी हुई आवाज। उन्मुक्त+आर्तनादम्—फूट २ कर दुख से चिल्लाने की आवाज। अपिततम् हुआ। मदन—कामदेव। निघृण—दुष्ट! अकृत्यम्—बुरा कार्य। अनुष्ठितम्—किया। अपकृतम्—अहित किया। इदानीम्—अब। वेत्सि—जानते हो। मुषितम्—लुटा हुआ। आत्मानम्—अपने को। निराश्रयम्+असि—आश्रय हीन हो। प्रतिपालय—प्रतीक्षा करो। भवन्तम्—आपको। अनुयास्यामि साथ जाऊंगा। शक्नोमि—सकता हूं। अवस्थातुम्—ठहरना। एकांकी—अकेला। विलवन्तम्—विलाप करते हुये। अश्रौषम्—सुना।

अर्थ—इसके पश्चात् रात्रि के प्रभाव के कारण दूर से स्पष्ट स्वर वाली दुख भरी आवाज को सुना 'हाय! मैं मारा गया।' हाय! यह क्या हो गया? हाय! दुष्ट कामदेव! नीच! तूने यह क्या बुरा कार्य किया? ओह पापिनी, दुष्ट महाश्वेता! इसने तेरः क्या अहित किया था? पापी, दुराचारी, चाण्डाल चन्द्रमा! अब तू कृतार्थ हो गया। हाय! भगवान श्वेवकेतू! आप अपने को लुटा हुआ नहीं जानते है! हा तपस्या! तुम आश्रयहीन हो। हाय सत्य! तुम अनाथ हो! हाँ सरस्वती! तुम विधवा हो गई हो। मित्र, मेरी प्रतीक्षा करो। मैं भी आपके साथ जाऊंगा। आपके बिना एक क्षण भी अकेला नहीं रह सकता हूं। इस तरह अनेक प्रकार से

विलाप करते हुए कपिञ्जल को सुना।

पृष्ठ २९, ३० तच्च श्रुत्वा.........नाज्ञासिषम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—मुक्तैकताराक्रान्दा (मुक्त एकतारं आक्रन्दं यया सा बहुव्रीहि) एक स्वर से चिल्लाने वाली। त्वरितैः—शीघ्र। प्रस्खलन्ती —गिरती लड़खड़ाती हुई। शशिमणि शिलातले चन्द्रकाँत मणि की शिला पर। विरचितम् -बने हुए। मृणालमय—कमल डंठल का बना। अधिशयानम् —सोये हुये। विगतजीवितम्—जीवन त्यागे हुए किम्+अकरवम्—क्या किया। व्यलयम् -विलाप किया। न+अज्ञासीषम् नहीं जाना।

अर्थ - उसको सुनकर दूर से ही एक स्वर से चिल्लाती हुई तेज कदम बढ़ाती हुई कदम कदम पर गिरती हुई उस स्थान पर जाकर तालाब के किनारे के समीप चन्द्रकांत मणि की शिला पर बने हुए कदम की डंठल के बिस्तर पर सोये हुए, तुरन्त मरे हुए उस भाग्यशाली को देखा। इसको देखने के कारण मूर्छा के अन्धकार में पड़ी हुई मैंने उस समय क्या किया? किस प्रकार विलाप किया यह सब कुछ नहीं जान सकी।

अथाहम् अतिचिरात्.........जीवितेश्वरम् इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—लब्धचेतना (लब्ध चेतना यया सा बहुव्रीहि)—होश में आये हुई। उपनतन—हुआ। आर्तनादा—दुख से चिल्लाती हुई। व्याहरन्ती—बोलती हुई। उत्मृज्य—छोड़कर। यासि—जाते हो। दुष्कृत-कारिणीम् —पाप करने वाली को। गतवती—चली गई। प्रसीदत—प्रसन्न होइये। प्रयच्छत—प्रदान कीजिये। ग्रहगृहीता—इव—ग्रहों में फंसी हुई के समान। उन्मत्ता+इव—पगली के समान। व्यलपम्—विलाप किया। प्ररुदम् —बहुत रोई। प्रसीद—प्रसन्न होइये। प्रत्युज्जीवय्+एनम्—इनको फिर जीवित कीजिये। तथाभूते—ऐसा होसे पर। मरणकनिश्चया (मरणम् एक एकः निश्चयः यस्या सा बहुव्रीहि)—एकमात्र मरण का निश्चय करने वाली। विलप्य—विलाप करके। काष्ठानि+आहृत्यालकड़िया जमा करके। निश्चय —बनाओ।

अर्थ—तब बहुत देर के बाद होश में आई हुई मैंने इस प्रकार विलाप किया—हाय यह क्या हो गया? हा नाथ आप मुझे अकेली छोड़कर कहाँ

जाते हो ! हाय, मैं मन्दभागिनी मारी गई । मुझ पापिनी को धिक्कार है । जो आपको इस प्रकार छोड़कर चली गई थी । हे भगवती देवता ! प्रसन्न होइये, इनके प्राणों को लौटा दीजिये । इस प्रकार तथा अन्य प्रकार से ग्रहों में फंसी हुई तथा पगली के समान बहुत विलाप किया । बार बार तरलिका का गला पकड़ कर बहुत रोई । कपिंजल के पैरों पर गिर कर बार बार कहा भगवन ! कृपा करके इनको फिर जीवित कीजिये । ऐसी दशा हो जाने पर एक मात्र मरने का निश्चय करने वाली मैंने बहुत प्रकार से विलाप करके तरलिका से कहा—अरी तरलिका ! उठ लकड़ियां जमा करके मेरे लिये चिता तैयार करो । मैं अपने प्राणेश्वर का अनुसरण करूंगी ।

अवान्तरे ····························उदयत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—विनिर्गत,—निकला हुआ । अवतीर्य—उतर कर । उपरतम्—मरे हुये । उत्क्षिप्त—उठाकर । परित्याज्या:—त्यागना चाहिये । तव+अनेन—तुम्हारा इससे । आदृत:—पूज्य । अभिधाय—कह कर । उदपतत्—चला गया ।

अर्थ—इसी बीच चन्द्र मण्डल से निकला हुआ दिव्य आकृति वाला पुरुष आकाश से उतर कर उस मरे हुये को भुजाओं से उठाकर गम्भीर स्वर से बोला—पुत्री महाश्वेता ! तुम्हें प्राण त्याग नहीं करना चाहिये । फिर तुम्हारा इससे मेल होगा । इस प्रकार पूज्य पिता के समान मुझे कह कर उसके साथ ही आकाश में चला गया ।

पृष्ठ ३१—अह च तेन··························अविशन् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—व्यतिकरेण—घटना से । सती होती हुई । अपृच्छम्—पूछा । ससंभ्रमम्—वेग पूर्वक । अदत्वा+एव+उत्तरम्—बिना उत्तर दिये ही । वयस्यम्—मित्र को । अपहृत्य—हरण करके । अभिधाय—कह कर । सकोप:—क्रोध के साथ । परिकरम् आबध्य—कमर कस कर । अन्तरिक्षम् –आकाश । उदपतत्–चला गया, उड़ गया । पश्यन्त्या:–देखती हुई । अविशन्–घुस गये ।

अर्थ—मैंने उस घटना से भयभीत, विस्मित और कुतुहल युक्त होती हुई कपिंजल से पूछा—वह बिना उत्तर दिये ही वेग से उठकर दुष्ट ! मेरे

मित्र को हरण करके कहां ले जाता है' ऐसा कह कर क्रोधपूर्वक तेजी के स ऊपरी वस्त्र से कमर कस कर उसका पीछा करता हुआ आकाश में उड़ गया मेरे देखते हुए ही वे सब तारागण के बीच में प्रविष्ट हो गये।

अहं तु कपिंजल ....में न्यपतत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—द्विगुणीकृतशोका—(द्विगुणीकृतम् शोकं यस सा बहुव्रीहि)–दुगुने शोक वाली। किंकर्तव्यनामूढ़:–कर्तव्य का ज्ञान करने वाली। स्त्रीस्वभाव कातरा:, (स्त्रिया, स्वभावेन कातरा तृतीया तत्पु —स्त्री स्वभाव के कारण भयभीत। विषण्ण हृदया–दुखी हृदय वाली अवादीत्–बोली। अमानुषकृति (न विधते मनुष्यस्य आकृति: यस्य स बहुव्रीहि)-मनुष्य की आकृति से भिन्न। सानुकम्हम्–दयापूर्वक। अनुसर –पीछा करता हुआ। अपगतासु: (अपगता असव: यस्य स: बहुव्रीहि) प्राणों से हीन। उत्क्षिप्य–उठाकर। नीत:--ले जाया गया। क्व-कहां उपलम्य--प्राप्त करके, जान करके। समाचारिष्यसि--करना। प्रत्यागम कालावधि (प्रत्यागनस्य कालावधि षष्ठी तत्पुरुष)--लौटने तक। ध्रियन्ता --धारण कीजिये। अभी--ये। न्यपतम्--गिर पड़ी।

अर्थ--मैं कपिंजल के जाने दुगुने शोक से भरी हुई तथा कर्तव्य को जान पाने के कारण तरलिका से बोली--अरी! क्या जानती नहीं हो बताओ यह क्या हुआ? वह उसे देखकर स्त्री स्वभाव के कारण भयभी तथा दुखी होकर बोली--'हे राजकुमारी! मैं नहीं जानती हू किन्तु य बड़ा आश्चर्यजनक है। इसकी आकृति पुरुष की आकृति से भिन्न है। आप कृपा पूर्वक इसने धीरज दिलाया है। उसका पीछा करता हुआ कपिंलल ग ही है। यह कौन है, कहां से आया था? यह किस लिये इस प्राणहीन उठाकर ले गया? अथवा कहां ले गया यह सब जानकर जीवन और मर कीजियेगा। कपिंजल के वापिस आने के समय तक इन प्राणों को धार कीजिये। ऐसा कहकर वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी।

पृष्ठ ३१, ३२--अहमपि तदेव.........प्रारोदम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—युक्तम्--उचित। मन्यमाना--मानती हुई न+उत्सृष्टवती—नहीं त्याग। ...म्--रात्रि को। क्षपितवती--व्यती

किया । प्रत्युषसि—प्रातःकाल । तस्मिन्+एव—उसी । सरति—तालाब में । स्नात्वा—स्नान करके । आदाय (आ पूर्वक दा धातु ल्यप प्रत्यय—लेकर । गृहीतब्रह्मचर्या (गृहीतम् ब्रह्मचर्यम् यया सा बहुव्रीहि) ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाली । शोषयन्ती—सुखाती हुई । स्थाणुम्—शिवजी को । आश्रिता—आश्रय लिया । अपरेद्युः—दूसरे दिन । समुपलब्धवृत्तान्तः । समुपलब्धः वृत्तान्तः येन स बहुव्रीहि)—समाचार प्राप्त करके । सह+अम्बया—माता के साथ । आगत्य—आकर । महान्तम्—बड़ा । दृढ़ाध्यवसायाम् दृढ़ निश्चय वाली । विसृज्य—छोड़कर । अयासीत्—चली गई । एवंविधा—ऐसी । निष्फल जीविता—व्यर्थ जीवन वाली । निस्सुखाः—दुखी । वल्कल+उपान्तेन—वल्कल वस्त्र के आंचल से । वदनम्—मुख । आच्छाद्य—ढ़क कर । मुक्त । कण्ठम्—जोर से । प्रारोदम्—बहुत रोई ।

अर्थ—मैंने भी उसी को उचित मानते हुए प्राणों का त्याग नहीं किया । उसी तालाब के किनारे तरलिका के साथ उस रात को बिताया । प्रातःकाल उठ कर उसी तालाब में स्नान करके, वहीं कमण्डलु लेकर, उसी अक्षमाला को ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हुई अनेक प्रकार के नियमों से शरीर को सुखाती हुई मैं भगवान शिव की शरण में पहुंची । दूसरे दिन कहीं से समाचार प्राप्त करके माता जी तथा बन्धुवर्ग के साथ पिता जी ने आकर अनेक प्रकार के उपदेशों से मुझे घर ले जाने का बड़ा प्रयत्न किया । मुझे अपने निश्चय में दृढ़ देख कर वे शोक के साथ मुझे छोड़कर चले गये । वही मैं ऐसी निर्लज्ज, निष्फल जीवन वाली तथा दुखी हूं ऐसा कहकर वल्कल वस्त्र के आंचल से मुख ढक कर बड़े जोर से बहुत रोई ।

चन्द्रापीडश्च तस्या ·········· परित्याज्याः प्राणाः ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—दक्षिण्येन—कुशलता से । मधुरालापतया—मधुर वार्तालाप के कारण । उपारूढ़ गौरवः गौरवशाली । तदानीम्—उस समय । अपरेण—दूसरा । नितराम्—अत्यधिक । क्लेशभीरुः (क्लेमेन भीरुः तृतीया तत्पुरुष) क्लेश से डरने वाला । कृत्स्तः—सम्पूर्ण । स्नेहसदृशम्—स्नेह के समान । अनुष्ठातुम् करने के लिये । अशक्तः—असमर्थ । उपदर्शयन्—दिखाता हुआ । प्रेमोचितम (प्रेम्न लचितम्)—प्रेम के योग्य । आचेष्टितम्

—आचरण किया । अनुमरणम्—पश्चात मरण । अविद्वज्जनाचरि विद्वनजन अविद्वज्जन तैः आचरितः तृतीया तत्पुरुष)—मूर्खों द्वारा अनु किया जाने वाला । अज्ञानपद्धति,—मूर्खता का मार्ग । मौर्ख्यस्खलितम्— का पतन । चेतः—यदि । जहति—त्यागता है ।

अर्थ—चन्द्रपीड उसके विनय कुशलता तथा मधुर वार्तालाप से पह गौरवयुक्त हो गया था दूसरे फिर सद्भाव दिखाने और अपना वृत्तान्त के कारण और भी अधिक प्रसन्न हुआ और बोला भगवति ! दुख से भ यह सम्पूर्ण संसार प्रेम के योग्य कार्य करने में असमर्थ होकर केवल आंसू गिराकर प्रेम प्रकट करता हुआ रोता है । आपने तो सब कुछ प्रे योग्य व्यवहार किया । आप रोती क्यों हैं ? अपने यह जो उसके पीछे की वात कही है वह तो बिल्कुल व्यर्थ है तथा इस मार्ग पर तो मूर्ख चलते हैं । वह मूर्खता का मार्ग है । यह मूर्खता से पतन का मार्ग है । प्राण स्वयं नहीं निकालते हैं तो प्राणों का त्याग नहीं करना चाहिये ।

पृष्ठ ३३—अत्र हि विचार्यमाणे········मुखीम् अकारयत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—विचार्यमणे—विचार करने पर । असह्य वेदना प्रतीकारत्वात् (असह्यः या शोकस्य वेदना असह्य शोकवेदना अप्रतीकारत्यात् षष्ठी तत्पुरुष) असह्य शोक की वेदना को दूर न कर के कारण । उपरातस्य—मृत व्यक्ति का । गुणम् आगहति—लाभ पहुंचता प्रति + उज्जनीवनस्योपायः—फिर दुवारा जीवित करने का उपाय, नरक प्रतीकारः—नरक में गिरने से रोकने का उपाय । धर्मोपचकारणम्— संचय करने का साधन । दर्शनोपाय (दर्शनस्य उपायः षष्ठी तत्पुरुष)— शास्त्र में बताया हुआ उपाय । आत्मघाती—आत्महत्या करने वाला । ए —पाप से । संयुज्यते—युक्त होता है । वह + उपकरोति + उपरतस्त— हुए मनुष्य का बड़ा उपकार करता है । आत्मनः—अपना । न —उभयस दोनों का नहीं । स्मर—स्मरण करो । भर्तरि—पति के । मकरकेतो देव के । अविरहिताम् + असुभिः प्राणों को न त्यागने वाली । वि दुहितरम्—राजा विराट की पुत्री को । पंचत्वम्—मृत्यु । उपगते— होने पर । धृतदेहाम्—शरीर धारण करने वाली । न + अर्हसि—योग्य

है। विधैः—इस प्रकार से । उपसान्त्वनैः—तसल्ली देने वाली बातों से । समस्वाप्य—समझा करके । अंजलिपुटोपनीतेन—अजली में लाये हुये । निर्झर जलेन—झरने के जल से । प्रक्षालितमुखीम् अकरोत् मुंह धुलवाया ।

अर्थ—इस विषय में विचार करने पर स्वार्थ ही प्राण त्याग का कारण प्रतीत होता है क्योंकि वह असह्य शोक की वेदना को दूर नहीं कर सकता है। इससे मरे हुए मनुष्य को कोई लाभ नहीं होता है। यह उसको फिर जीवित करने का उपाय नहीं है। न नरक में गिरने से बचने का उपाय है, न धर्म संचय करने का उपाय है, न दर्शन शास्त्रों में बताया गया है। यह जीव किसी अन्य कार्य की प्रेरणा से ही ऐसा कर्म करता है। यह आत्म हत्या करने वाला मनुष्य केवल पाप का ही भागी नहीं होता है। मनुष्य जीवित रहता हुआ तो जलांजलि दान आदि के द्वारा मृत व्यक्ति का तथा अपना बहुत उपकार करता है। मरने पर दोनों में से किसी का भी उपकार नहीं करता है। उस पतिव्रता प्रिया रति का स्मरण करो जो अपने पति कामदेव के मरने पर भी जीवित रही। राजा विराट की पुत्री उत्तरा को स्मरण करो जो अभिमन्यु के मरने पर शरीर धारण किये रही। प्रथा का स्मरण करो जो पाण्डु के मरने पर भी जीवित रही। इसलिये अपने पवित्र जीवन की निन्दा न कीजिये। इस प्रकार की बातों से तथा अन्य अनेक प्रकार की बहुत सी सान्तवना देने वाली बातों से उसे समझा बुझा कर चन्द्रापीड़ ने अपनी अंजली रूपी पट में लाये हुए झरने के जल से उसका मुख धुलवाया।

अथ क्षीणे दिवसे .... अकल्पयत ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—पश्चिमा सन्ध्याम्—सायंकाल को संध्या। उपास्य—उपासना करके। निःश्वस्य —सांस लेकर। निषाद—बैठी। अप्यम् अकल्पयत्—बिस्तर तैयार किया।

अर्थ—इसके पश्चात् दिन समाप्त होने पर महाश्वेता मन्द मन्द उठकर सायंकाल की संध्या करके वल्कल से विस्तर पर खेदपूर्वक लम्बी सांस लेकर बैठ गई। चन्द्रापीड ने भी उठकर सायंकालीन सन्ध्या करके उस दूसरे शिला-तल पर कोमल लताओं और पत्तों से विस्तर तैयार किया।

पृष्ठ ३३, ३४—उपविष्टश्चं ....'ग्राहयिष्यामि इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उपविष्टः—बैठा हुआ । मनसा भावयन्-मन में विचार करता हुआ । पप्रच्छ-पूछा । गता—गई । अमृतसम्भव-अमृत से उत्पन्न । अप्सरः—अप्सरा के । अभूत—हुई । दक्षदुहितुः—दक्ष पुत्री का । पाणिम् अग्रहीत—पाणि ग्रहण संस्कार किया, विवाह किया सेवमानयोः सेवा करते हुये । उदपादि—उत्पन्न हुई । जन्मनः प्रभृति—ज से लेकर । बाल मित्रम्—बचपन की साखी । सा + इयम्—वह, यह । अनु + एव—इसी । मदीयेन—री । आकर्षीत्—किया । कथाचित् + अपि किसी प्रकार भी । पाणिम् ग्राहयिष्यामि—विवाह करवाऊंगी ।

अर्थ—उस पर बैठने के पश्चात् उसी महाश्वेता के वृत्तान्त का मन विचार करते हुए मैंने फिर इससे पूछा—देवी ! वह आपकी सेविका तरलि कहां गई ? उसने कहा—हे महाभाग ! सुनिये, अमृत से उत्पन्न अप्सर कुल से मन्दिरा नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी । दक्ष की पुत्री मुनि के चित्ररथ नामक गन्धर्वराज ने उससे विवाह किया । पारस्परिक प्रेम भा परिपूर्ण उन दोनों के यौवन का सुख भोगते हुए एक पुत्री रत्न कादम्बरी की पुत्री रत्न उत्पन्न हुई । वह जन्म से ही मेरी अभिन्न बचपन की सखी उसने मेरे इसी वृत्तान्त से दुखी होकर निश्चय किया कि 'मैं महाश्वे शोकग्रस्त होते हुए किसी भी प्रकार अपना विवाह नहीं करवाऊंगी ।

तत आत्मदुहितु ... तूष्णीम् अभावत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—आत्मदुहितुः—अपनी पुत्री का । शुश्र सुना । गच्छतिकाले—समय बीतने पर । एकापत्यतया—एक सन्तान कारण । समुपारूढयौवनाम्—युवावस्था को प्राप्त । अभिधातुम् अश कहने में असमर्थ । अनुनेतुम्—मानने के लिये, समझाने के लिये । संदि सदेश देकर । प्रत्युषसि—प्रातःकाल । प्रेषितवान्—भेजा था । गौरवात्—गुरुजनों के वचन के सम्मान के कारण । सार्धम्—साथ । राम—अधिकाधिक । दुःखयसि—दुख देती हो । जीवन्तीम्—जीवित अविरतम् ... विसर्जिता—भेज दिया ... उपप्राप्तः—पहुँ इति + अभिधाय—ऐसा कहकर । तूष्णीम् अभवत्—चुप हो गई ।

अर्थ—अपनी पुत्री के निश्चय वचन को चित्ररथ ने सुना। कुछ समय बीतने पर उसे युवावस्था में देखकर इकलौती तथा अत्यधिक प्रिय सन्तान होने के कारण वह उसे कुछ भी कहने में असमर्थ होकर 'पुत्री महाश्वेता! अब तुम्हीं कादम्बरी को मनाने के लिये शरण हो' ऐसा संदेश देकर क्षीरोद नामक कचुकी को आज ही प्रातः काल मेरे समीप भेजा था। तब मैंने गुरु वचन के सम्मान तथा सखी प्रेम के कारण क्षीरोद के साथ उस तरलिका को यह संदेश देकर भेजा है कि हे सखी कादम्बरी! तुम दुखी व्यक्ति को और अधिक दुखी क्यों करती हो? यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहती हो तो गुरुजनों के वचन को सफल करो। उसके जाने के पश्चात् ही आप यहां पधारे हैं। ऐसा कहकर वह मौन हो गई।

पृष्ठ ३५—क्रमेण च उदगते·········इत्यपृच्छत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उदगते—उदय होने पर। कुमुदवान्धवे—चन्द्रमा की सुप्ताम्—सोई हुई। पल्लवशयते—पल्लव के शयन पर। समुपाविशात्—बैठ गया। देलयात्—समय में। मम+अन्तरेण—मेरे बिना। चिन्तयम्—सोचते हुए। निद्रां ययौ—सो गया। क्षीणयाम्—बीतने पर। क्षयायाम्—रात्रि के। उपषि—प्रातःकाल। उपासस्य—उपासना करके। निर्वर्तित प्रभातिकविधौ (निर्वर्तित प्रभातस्य विधि येन सः तस्मिन बहुव्रीहि) —प्रातःकाल की विधि समाप्त किये हुये। षोडसवर्षवयसा—सोलह वर्ष की आयु वाली। दारकन—पुत्र के साथ। प्रादुराप्तीत—उपस्थित हुई। आगत्य —आकर। उपसृत्य—समीप जाकर। कृतप्रणामा (कृतः प्रणामः यया सा बहुव्रीहि)—प्रणाम कर चुकने वाली। दृष्टा—देखा। असमत्+वचनम्—हमारा कहना। इति अपृच्छत्—ऐसा पूछा।

अर्थ—क्रमशः चन्द्रमा के उदय होने पर चन्द्रापीड महाश्वेता को सोई हुई देखकर पल्लव के शयन पर बैठा। इस समय मेरे बिना वैशम्पायन क्या सोचता होगा' इस प्रकार सोचता हुआ सो गया। रात्रि व्यतीत होने पर उषा काल में सन्ध्या करके शिलातल पर महाश्वेता के बैठने पर तथा चन्द्रापीड के प्रातः कालीन क्रिया समाप्त कर लेने पर सोलह वर्ष की आयु वाले

केयूरक नामक गन्धर्वकुमार के साथ तरलिका उपस्थित हुई । उसने म
महाश्वेता के समीप प्रणाम करके बिनयपूर्वक बैठ गयी । महाश्वे
उसको देखकर पूछा कि क्या तुमने कादम्बरी को सकुशल देखा। तथा
वह हमारा कहना मानेगी ?

अथ सा तरलिका.......... किं या प्रकोपः

शब्दार्थ तथा व्याकरण—भर्तृदारिका—राजकुमारी । सर्वतः—सब प्र
से । निखिलम्—सम्पूर्ण । भर्तृदुहितु—राजकुमारी का । प्रति संदिष्ट
संदेश के उत्तर में संदेश भेजा है । तथा + एव—उसके द्वारा ही । विस
भेजा हुआ । व्यज्ञिज्ञपत—निवेदन किया । विरतवचसि—बोलना बन्द
पर । विज्ञापयति—निवेदन करती है । आगत्य—आकर । मत् + चित प
णम्—मेरे चित की परीक्षा । प्रेम विच्छेद + अभिलाषः—प्रेम पूर्ण स
तोड़ने की इच्छा । प्रकोपः—क्रोध ।

अर्थ—इसके पश्चात् तरलिका बोली 'हे राजकुमार ! मैंने राजकु
कादम्बरी को सब प्रकार से सकुशल देखा और आपका सम्पूर्ण सन्देश
दिया । उसे सुनकर जो सन्देश भेजा है उसे उनके द्वारा भेजा हुआ उन
वीणा वाहक यह केयूरक बतायेगा । उसके कह कर मौन होने पर
बोला—'हे राजकुमारी महाश्वेता ! देवी कादम्बरी आपको निवेदन क
कि तरलिका ने आकर जो कुछ बताया वह क्या मेरे चित्त की परीक्ष
अथवा क्या प्रेम पूर्ण सम्बन्ध को तोड़ने इच्छा है अथवा क्रोध है ?

पृष्ठ ३६—यत्र भर्तृ विरह........प्राहिणोत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—विधुरा—दुखी । महत् बड़ा । कृच्छ्
कष्ट । अनुवर्ति—भोगती है । अविगणय्य—उपेक्षा करके । एतत्—
आत्म सुखनिनी—अपना सुख चाहने वाली । पाणि ग्राहयिष्यामि—
करवाऊंगी । कुथाः—करो । ऊमम्—अर्थम्—यह बात । मनसि—म
विचार्य—विचार करके । यथार्हम्—जैसा उचित है । आउरिष्यामि—
प्राहिणोत्—भेज दिया ।

अर्थ जहां मेरी सखी पति के वियोग में दुखी होकर बड़ा कष्ट
रही है वहां मैं उसकी उपेक्षा करके अपने सुख की इच्छा से कैसे

कराऊंगी। अथवा इससे मुझे कैसे सुख होगा ? इसलिये स्वप्न में भी फिर कभी यह बात मन में न सोचना। महाश्वेता ने इसको सुनकर और बहुत देर तक विचार करके 'जाओ, मैं स्वयं आकर जैसा उचित होगा करूंगी' ऐसा कहकर केयूरक को भेज दिया।

गतेन्च केयूरके ....सहैव उदचलम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—रमणीय—सुन्दर। चित्रा—विचित्र। पेशलः—समृद्ध। इतः—यहां से। मया+एव—मेरे ही साथ। मन्निविशेषाम्—गुण से अभिन्न। अपनीय—दूर करके। मोहविलसितम्—मोह का विलास। अहः—दिन। विश्रम्य—विश्राम करके। श्वोभूते—कल होने पर। प्रत्तागमिष्यसि—लौट आओगे। दर्शनातप्रभृति—दर्शन के समय से। परवान—पराधीन। यथेष्टस्—इच्छानुसार। नियोज्यताम्—नियुक्त करो। अभिधाय—कहकर। उदचलम्—चल पड़ी।

अर्थ—केयूरक के चले जाने पर चन्द्रापीड से बोली हे राजकुमार ! हेमकूट बड़ा सुन्दर है। चित्ररथ की राजधानी बड़ी विचित्र है। गन्धर्वलोक बड़ा समृद्ध है। कादम्बरी सरल हृदय वाली तथा महान भावों वाली है। इसलिये यहां से मेरे साथ हेमकूट जाकर और मेरी अभिन्न सखी कादम्बरी से मिलकर उसके मोह को दूर करके, एक दिन वहां विश्राम करके दूसरे दिन वापिस लौट आयेगा। ऐसा कहने पर चन्द्रापीड ने कहा हे देवी ! मैं आपके दर्शन के समय से ही पराधीन सा हो गया हूं। इसलिये आप इच्छानुसार कर्तव्य कर्म में नियुक्त कीजिये। ऐसा कहकर उसके साथ ही चल पड़ा।

क्रमेण च गत्वा....... कादम्बरी देदर्श।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—समतीत्व—पार करके। सप्तकक्षान्तराणि—सात कक्षों का। कन्यकान्त पुरमः—कन्याओं का भवन। तत् मध्ये—उनमें। परिवृताम्—घिरी हुई। नीलप्रच्छदपटप्रावृतस्य (नीलः यः प्रच्छदपटः नील—प्रच्छद पटः तेन प्रावृतस्य तृतीया तत्पुरुष) नीली चादर बिछे हुए। न+अथिमहतः—जो बहुत बड़ा न हो। पर्यंकस्य—पलंग के। धवलोपधानन्यस्त-भुजलता वष्टम्भेन—स्वच्छ तकिये पर भुजलता रखकर विश्राम करती हुई।

सर्वरमणीयकानाम्—सभी सुन्दरता का। एक निवास भूताम्—एकमात्रनि स्थान।

अर्थ—क्रमशः हेमकूट पर जाकर गन्धर्वराज कुल में पहुंचकर, सात को पार करके कन्याओं के अन्त:पुर में जाकर वहां कादम्बरी का भवन उसमें स्थित श्री मण्डप को देखा। उसके बीच में अनेक सहस्त्र कन्याओं घिरी हुई, नीली चादर बिछे हुए छोटे पलंग पर स्वच्छ तकिये के ऊपर रखकर बैठी हुई, सब प्रकार की सुन्दरता का एकमात्र निवास स्थान कादम्ब को देखा।

पृष्ठ ३७—सातु समुत्थाय.........प्रक्षालितवती चरणौ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—स्नेह निर्भरम्—प्रेम में व्याकुल। कण्ठे जग्रा गले लग गयी। दृढ़तरदत्तकण्ठग्रहा (दृढ़तरं दत्तः कण्ठग्रह यया सा बहुव्री बड़े जोर से गले लग कर। आत्मजः—पुत्र। अनुगतः—आये हैं। भूमिम् इमाम्—इस भूमि में। निष्कारणबन्धुताम्—बिना कारण के ही बन्धुता कथिता—कहा है। विमुच्य—छोड़ कर। अविज्ञातशील: (अविज्ञातः यस्य स बहुव्रीहि) जिसका स्वभाव ज्ञात नहीं है। अपहाय—छोड़कर। शं —भय। वर्तितव्यम्—व्यवहार करना चाहिये। आवेदित—निवेदन करने कादम्बरी+अपि। पर्यंके—पलंग पर। निषसाद—बैठा। तसम्भ्रमम् घबराहट अथवा वेग के साथ। परिजनोपनीतायाम्—सोने की बनी हुई पीठिकायाम्—आसान पर। समुपाविशत्—बैठा। प्रक्षाल्य—धोकर अपमृ —पोंछ कर। आरुरोह—बैठ गया। प्रक्षालितवती—धोया।

अर्थ—उसने उठकर प्रेम से व्याकुल होकर महाश्वेता के गले को प लिया। महाश्वेता ने भी जोर से गले लग कर उससे कहा—सखी कादम्बरी भारतवर्ष में तारापीड नामक राजा हैं। उनके यह पुत्र चन्द्रापीड दिग्वि के प्रसंग से इस स्थान तक आये हैं। यह दर्शन के समय से हीं बिना का मेरे बन्धु बन गये है। मैंने इनको अनेक प्रकार से प्रिय सखी के विषय में है। अपूर्व दर्शन के योग्य है इसलिये लज्जा छोड़कर तथा अपरिचित स्व वाले हैं इसलिये शका छोड़कर तथा जैसे मेरे साथ वर्ताव करती हो वैसा

इनके साथ भी व्यवहार कीजिये । उसके द्वारा इस प्रकार बताये जाने पर चन्द्रापीड ने प्रणाम किया । कादम्बरी ने भी बड़ी घबराहट के साथ प्रणाम करके महाश्वेता के साथ पलंग पर बैठ गयी । चन्द्रापीड सेवकों द्वारा शीघ्रता-पूर्वक लाये हुये सोने के आसन पर बैठ गया । कादम्बरी सेवकों द्वारा लाये हुये जल से स्वयं ही उठकर महाश्वेता के पैरों को धोकर तथा दुपट्टे से पोंछ कर फिर पलंग पर बैठ गयी । कादम्बरी की सखी मदलेखा ने चन्द्रापीड के पैरों को धोया ।

पृष्ठ ३७, ३८—अथ महाश्वेता······प्रायच्छत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अनामयम्—कुशलता । अप्रच्छ—पूछा । कृतापराधा+इव—जैसे अपराध किया हो । कृच्छात्+इव—कष्ट के साथ । आचचक्षे—बताया । मुहूर्त+अपगमे—क्षण भर बाद । ताम्बूलदनोद्यताम् (ताम्बूलदानाय उद्यतायातास्) पान देने के लिये तैयार । अभिनवागतां—नवीन आते हुए । आराधनीयः—सत्कार करना चाहिए । दीयताम्—दीजिये । शनैः—धीरे से । अव्यक्तम्—अस्पष्ट । अनुपजातपरिचया—अपरिचित होने के कारण । प्रागल्भ्येन+अनेकन—इस प्रगल्भता से । गृहाण—लीजिये । प्रयच्छ—दीजिये । अभिधीयमाना—कही जाती हुई । ग्राम्ता+इव—ग्रामीणा के समान । दानाभिमुखम्—देने के लिये । मनः+चक्रे—निश्चय किया । अनाकृष्टदृष्टिः—बिना दृष्टि हटाये ही । वेपमान+अ वयाष्टिः—कांपते हुए शरीर वाली । असारयास—फैलाया । ताम्बूल गर्भम्—पान युक्त । स्वभाव-पाटलम् (स्वभावेन पाटलम् तृतीया तत्पुरुष) स्वभाव से लाल । धनुर्गुणाकर्षण कृताकिणश्यामलम् (धनुषः गुणास्य आकर्णम् अनुर्गुणाकर्षणम तेन कृत किण श्यामलम् तृतीया तत्पुरुष) धनुष की प्रत्यंचा को खींचने के कारण काले किण से युक्त । पाणिम्—हाथ । प्रसार्य—फैला कर । प्रतिजग्राह—ग्रहण किया । आरम्—दूसरा । प्राभच्छत्—दिया ।

अर्थ—इसके पश्चात् महाश्वेता ने कादम्बरी से कुशल समाचार पूछा । उसने सखी के प्रेम से भरकर घर में निवास करने के कारण जैसे अपराध किया हो लज्जित होती हुई बड़े कष्ट के साथ अपना कुशल समाचार बताया । घड़ी भर समय बीतने पर महाश्वेता ने पान देने के लिए तत्पर उस कादम्बरी

से कहा—'सखी कादम्बरी ! हम सबको इस नवीन आये हुए अतिथि चन्द्रापीड का स्वागत करना चाहिये । हम सबको इस नवीन आये हुए अतिथि चन्द्रापीड का स्वागत करना चाहिये । इसलिये पहले इनको दो ।' इस प्रकार कहे जाने पर वह धीरे से अस्पष्ट रूप में बोली—'हे सखी ! अपरिचित होने के कारण मुझे इस प्रगल्भता से लज्जा होती है । इसलिये लीजिये आप ही इनको दीजिये ।' बार बार कहे जाने पर उसने बहुत देर के बाद ग्रामीण स्त्री के समान पान देने का निश्चय किया । महाश्वेता के मुख पर से दृष्टि हटाये बिना ही कांपते हुए शरीर वाली उस कादम्बरी ने अपना पान वाला कोमल हाथ फैलाया । चन्द्रापीड ने स्वभाव से लाल किन्तु धनुष की प्रत्यंचा को सदा खींचते रहने के कारण काले किण वाले हाथ को फैलाकर पान ग्रहण कर लिया । इसके पश्चात् कादम्बरी ने दूसरा पान लेकर महाश्वेता को दिया ।

पृष्ठ ३८—अत्रान्तरे कंचुकी ·········· मणिमन्दिर अगात् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सामान्य आकर । अबोत्—बोली । आह्वयत:—बुलाते हैं । इति+एवम्—इस प्रकार । गन्तुकाम:—जाने की कामना करती हुई । क्व आस्ताम्—कहां रहे । आभदधासि—कहती हो । दर्शनात्+आरम्भ—दर्शन के समय से ही । प्रभु—स्वामी । उत—अथवा । प्रासाद—महल । मणिवेश्मनि—मणि के बने राजभवन में । आस्ताम्—रहें, ठहरे । अभिधाय—कहकर । ययौ—चली गई । द्रष्टुम्—मिलने के लिये । तया+एव—उसके ही साथ । निर्गत्य—निकल कर । उपदिश्यमान मार्ग: (उपदिश्यमान: मार्ग: यस्य स: बहुव्रीहि) मार्ग बताया जाने वाला । अगात्—चला गया ।

अर्थ—इसी बीच कंचुकी ने आकर महाश्वेता से कहा हे आयुष्मती ! महाराज चित्ररथ तथा महारानी मदिरा आपसे मिलने के लिये आपको बुलाते हैं ।' इस प्रकार कही हुई महाश्वेता जाने के लिए कामना करती हुई बोली—'हे सखी ! यह चन्द्रापीड कहां ठहरे ?' इस प्रकार कादम्बरी से पूछा । उसने कहा 'हे सखी महाश्वेता ! आप ऐसी बात क्यों कहती है ? यह तो दर्शन के समय से ही शरीर के भी स्वामी हो गये हैं, राजभवन, सम्पत्ति, अथवा परिजनों की तो बात क्या है । इनको जहां अच्छा लगता है अथवा

य सखी के मन को जहां अच्छा प्रतीत होता है वहां ही यह ठहरें। यह
नकर महाश्वेता बोली 'अच्छा तो यह तुम्हारे राजभवन के समीप स्थित
मद वन में क्रीड़ा पर्वत के ऊपर स्थित मणि के भवन में ठहरें।' ऐसा कह
र गन्धर्वराज से मिलने के लिये चली गई। चन्द्रापीड भी उसके ही साथ
कलकर केयूरक द्वारा मार्ग दिखाया जाता हुआ मणि मन्दिर में चला गया।

पृष्ठ ३९—गते च तस्मिन ....लज्जाम् उवाह।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—विसृज्य:—छोड़ कर। सकलम्—सम्पूर्ण। रिलनम्—सेवकजन। आरुरोह—चढ़ गई। शयनीये - पलंग पर। निपत्य—डकर। एकाकिनी—अकेली। आरब्धम्—आरम्भ किया। चपलया—चंचल, री'क्षता—परीक्षा की। चित्तवृत्तिः—स्वभाव। परित्यक्त—छोड़ दिया। लकन्यकानाम्—कुलीन कन्याओं का। क्रमः—तरीका। त्रस्तम्—भयभीत ई। लोकापवादात् (लोकस्य अपवादात षष्ठी तत्पु०) लोक निन्दा से। न+ उद्विग्नम् - नहीं घबरायी, नहीं डरी। आसन्नवर्ती–समीप स्थित। उपलक्षयति—देखती है। मन्दया— मूर्ख। लक्षितम्—देखा। व्यतिकरेण—घटना से, म्बन्ध से। श्रुत्वा+एव वृत्तान्तम्—इस वृत्तान्त को सुनकर। वक्ष्यति—कहेगी। अम्बा—माता। स्खलितम्—गलती। प्रच्छादयामि—दूर करूं, ढकूं। पूर्वकृतापूण्यसचयेन—पूर्व जन्म में किये पाप के समूह में। आनीता—लाया गया। विप्रलम्भकः— वंचक, ठगने वाला। संचित्य—सोचकर। गुर्वीम्—बड़ी। उवाह—धारण किया।

अर्थ उसके चले जाने पर गन्धर्वराज पुत्री कादम्बरी सभी सखियों और सेविकाओं को छोड़कर महल पर चढ़ गयी। वहां एक पलग पर लेटकर अकेली इस प्रकार सोचने लगी—'ओ ! मुझ चचल बालिका ने यह क्या किया ? मैंने इसके स्वभाव की परीक्षा नहीं की। अच्छे कुल की कन्याओं का क्रम भी त्याग दिया। गुरुजनों से भी भयभीत नहीं हुई। लोकनिन्दा से भी नहीं डरी। समीप स्थित सखियां मुझे देखती हैं इस बात को भी मुझ मूर्ख ने नहीं देखा। महाश्वेता के सम्बन्ध में की हुई मेरी उस प्रतीक्षा को तथा आज इस समाचार को सुनकर माता जी और पिता जी क्या कहेंगे ? क्या करूं ? किस उपाय से अपनी इस गलती को छिपाऊं। पूर्व जन्म में किया हुआ मेरा

पाप समूह ही मेरे सामने इस वंचक चन्द्रापीड को लाया है, ऐसा सोचकर वहुत लज्जित हुई।

पृष्ठ ३९-३९—चन्द्रापीड़ोऽपि.........आवृणोति इति।

शब्दार्थ—प्रविश्य—प्रवेश करके। शिलातलास्तीर्णायाम्—शिला पर विछी हुई। उभयत:—दोनों ओर। उपर्युपरि ऊपर ऊपर। निवेशित वहुपधानायाम् (निवेशिता बहव: उपधाना यस्याम् ताम् वहुव्रीहि) जिस पर वहुत से तकिये रखे हुये थे। कुथायाम्—गलीचे पर। निपत्य—गिरकर। उत्संगे—गोद में। दोलायमानेन—चचल। चेतसा—चित्त से। चिन्ताम् —चिन्ता करने लगी। महभुव: —साथ होने वाला। विलासा: आनन्द, आहोस्वित–अथवा। अनाराधित प्रसन्नेन (अनाधित: प्रसन्न: य: तेन बिना आराधना के प्रसन्न। मकरकेतुना कामदेव के द्वारा। सरागेण- पूर्ण। चक्षुषा—दृष्टि से। तिर्यक—तिरछा। विलोकयति —देखती है। कृता—देखे जाने पर। आवृणोति—छिपती है। भूय:—फिर। वृथा—व्यर्थ ही। मनसा खेदितेन मन को दुखी बनाने से। धवलेक्षणा (धवलम् ईक्षणम् यस्या सा वहुव्रीहि) स्वच्छ दृष्टि वाला। मयि+एवम् मुझ पर इस प्रकार। जातचित्तवृत्ति:—आसक्त। न चिरात्: शीघ्र। अप्रार्थित (न प्रार्थित: अप्रार्थित:, अप्रार्थित: अनुकूल य: स:) बिना प्रार्थना के ही। मन्मथ:—कामदेव। प्रकटीकरिष्यति प्रकट करेगा। संशयस्य छेत्ता—संशय का नाश करने वाला। इति + अवधार्य ऐसा निश्चय करके। विनोदाय मनोविनोद के लिये। प्रहितामि—भरी हुई। अक्षै:—पासा शतरंज। —गीत। विपंचीवाद्यै:—वीणा वादन आदि से। स्वरमन्देह्विवादै— के स्वर सम्बन्धी वाद विवाद के द्वारा। सुभाषित गोष्ठीभि:—मधुर द्वारा। सरस+आलपै:—मधुर वार्तालाप के द्वारा।

अर्थ—चन्द्रापीड भी मणि के बने भवन में प्रवेश करके शिला बिछे हुए उस गलीचे पर लेट कर, जिसके दोनों ओर बहुत से तकिये हुए थे. केयूरक द्वारा गोद में लेकर दोनों पैरों को दबाते हुए चचल सोचने लगा—'क्या यह मानस कादम्बरी के साथ निवास के कारण

रहा है अथवा विना पूजा किये ही प्रसन्न कामदेव ने मुझ में उत्पन्न कर दिया है ? जिसके कारण वह प्रेमपूर्ण तिरछी दृष्टि से देखती है तथा मेरे द्वारा देखे जाने पर लज्जादश अपने को छिपा लेती है।' उसने फिर सोचा—इस विषय में व्यर्थ सोचकर मन को दुखी करने से क्या लाभ ? यदि वास्तव में वह निर्मल दृष्टि वाली मुझ पर इस प्रकार आसक्त है तो शीघ्र ही विना प्रार्थना के ही प्रसन्न वने हुए कामदेव इस बात को प्रकट कर देंगे । वही इस सन्देश का नाश करेंगे।' ऐसा निश्चय करके कादम्बरी द्वारा मनोविदोद के लिए भेजी हुई कन्याओं के साथ द्यूत क्रीड़ा, गायन, वीणा वादन, संगीत में होने वाले सन्देह सम्बन्धी वाद बिवादों की सुन्दर सभा तथा दूसरे वहुत सी मधुर वार्तालाप के द्वारा क्रीड़ा करता हुआ निवास किया।

पृष्ठ ४०—एवं मुहूर्तम् ···· ·· प्रतिजग्राह।

शब्दार्थ—परिजनेन सेबकों द्वारा। निर्वर्तित स्नान विधिः स्वात विधि करके। अर्चिताभिमतदैवतः—अर्चितः अभिमान दैवतः येन सः वहुव्रीहि) इष्ट देवता को पूजा करके । आहारादिकम—भोजन आदि। अहः कर्म—दैनिक कार्य। चक्रे—किया। प्राग भागे—पूर्वी भाग में । दृष्टवान्—देखा। सहसा एव - अचानक ही । धवलेन + आलोकेन—स्वच्छ प्रकाश भे। विलिप्य मानम्—लिये जाते हुए अम्बरतलम्—आकाश को । अद्रक्षीत्—देखा । आगच्छन्तीम्—आती हुई। सितांशुकोच्छदे (सित यः अंशुकः तेन उपच्छने तीया तत्पुरुष)सफेद रेशमी वस्त्र से डके हुए। पटलके—टोकरी में। शरत शिनम् इव —शरत् ऋतु के चन्द्रमा के समान। प्रभावर्षिनम् - प्रभा की वर्षा करने वाले। धवलिम्न—स्वच्छता का। प्रत्युस्थ'न–आदिना उट कर स्वागत करने आदि से। उपचारेण—तरीके से। प्रतिजाग्राह—स्वागत किया।

अर्थ इस प्रकार घड़ी भर ठहर कर कादम्बरी के सेवकों द्वारा स्नान करा दिये जाने पर तथा इष्ट देवता की पूजा कर चुकने पर मैंने क्रीड़ा पर्वत पर ही भोजन आदि दैनिक कार्य किये । इसके पश्चात् क्रीड़ा पर्वत के पूर्वी भाग में सुन्दर मरकत की शिला पर वैठते हुए अचानक सामने स्वच्छ प्रकाश को लिये हुए आकाश को देखा तथा आती हुई मनलेखा को तथा उसके समीप परिचिका को देखा। उसके द्वारा सफेद रेशमी वस्त्र में ढकी हुई टोकरी में

लिये हुए शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान प्रभा की वर्षा करने वा
चमकते हुए हार को देखकर 'यह इस आकाश की स्वच्छता का का
ऐसा निश्चय करके प्रत्युत्थान आदि यथायोग्य विधि से मदलेखा का
किया।

पृष्ठ ९०-४१ सा तस्मिन्नेव············मदलेलास्।

शब्दार्थ—मरकतग्राविणः—मरकत की शिला पर। उपविश्य—बै
अनुलिप्य—लेप करके। दुकूले—श्वेत रेशमी वस्त्र। परिधाप्य—पहना
कुसुमदामभिः—फूलों की माला से। आरचित शेखरम्—सिर पर
पहना कर। (आपूर्वक पा धातु ल्यप् प्रत्यय) लेकर। अम्भसाम्प
—जल के देवता वरुण ने। उपगताय—आये हुए। प्रचेतसे—कुबे
पागभृता—कुबेर ने। त्वद्वपु—तुम्हारा शरीर। अनुरूपम्—योग्य।
यन्त्या—विचार करती हुई। अनुप्रेषितः—भेजा है। अर्हति—
त्वत्तः—आपसे। सदिष्टम्—संदेश दिया। मनसा+अपि—मन से भी
प्रणायभग—प्रथम प्रेम को तोड़ना। बक्षस्थले—हृदय पर। ववन्ध
दिया। विस्मयमानः—विस्मित होता हुआ। प्रति+अवादीत्—
निपुणा+असि—कुशल हो। ग्राहयितुम्—ग्रहण करना। उत्तरा
(उत्तरस्य अवकाशम् षष्ठी तत्पुरुष) उत्तर देने का अवसर। अपहर
देती हुई, बचाती हुई। वचसि कौशलम्—वचन में चतुराई। सम्बन्
सम्बन्धी। विसर्जयांबभूव—भेज दिया।

अर्थ—वह उसी मरकत की शिला पर घड़ी भर बैठ कर और
कर चन्द्रापीड के शरीर पर चन्दन का लेप कर दो स्वच्छ रेशमी व
कर, उन मालती पुष्प की मालाओं से उसके सिर को अलकृत कर
उस हार को लेकर बोली—'हे राजकुमार! जल के देवता भगवान
यह शेष नामक हार अपने घर आये हुए वरुण को भेंट दिया।
गन्धर्वराज को दिया था, गन्धर्वराज ने कादम्बरी को किया था,
यह सोचकर कि यह हार आपके शरीर के योग्य है आपके लिये
इसलिये यह आपसे सम्मान प्राप्त करने योग्य है। महाश्वेता ने

को यही सन्देश दिया है कि आप मन में भी कादम्बरी के इस प्रथम प्रेम की भेंट को अस्वीकार करने की बात न सोचे। ऐसा कहकर उस हार को उसके गले में पहना दिया। चन्द्रापीड ने चकित होते हुए कहा—हे मदलेखा ! बड़ी चालाक हो। कोई वस्तु ग्रहण कराना अच्छी तरह जानती हो। उत्तर देने का अवसर न देकर तुमने अपने वचन की चतुराई दिखा दी। ऐसा करकर कादम्बरी से सम्बन्धित कथायें करते हुए बहुत देर तक वहां ठहर कर मदलेखा को भेज दिया।

पृष्ठ ४१—अथ अदर्शनम्........ शयनम् अभजत्।

शब्दार्थ—अदर्शनम् उपगते—अस्त होने पर। गमस्तिमालिनि—भगवान सूर्य, गृह कुमुदिन्याः—राजमहल की बावड़ी के। क्षालितम्—धुले हुए। कादम्बरी परिजनोपदिष्टे (कादम्बर्या परिजनैः उपदिष्टे बहु०) कादम्बरी के सेवकों द्वारा बताते हुए। अधिशिश्ये—सोया। कंचित् कालम्—कुछ समय। कदृशी—कैसी। कियति+अध्वनि—कितनी दूर। कीदृशम्—कैसा अशेषम्—सभी बातें। विविधाभिः—अनेक प्रकार की। चन्द्रापीड समीपशोतियम्—चन्द्रापीड के समीप सोने के लिये। शयन सोधशिखरम्—शयन करने का भवन, आरुरोह—चढ़ गई, चली गई, सितदुकूलवितानलास्तीर्णाम्—सफेद रेशमी चंदोवा बिछे हुए। शयनम् अभजत—सोया।

अर्थ—इसके पश्चात् भगवान सूर्य के अस्त हो जाने पर राजभवन के तालाब के किनारे चन्दन के रस से धुले हुए कादम्बरी के सेवकों द्वारा बताये हुये शिला तल पर चन्द्रापीड सोये। उसी समय मदलेखा के साथ आकर कादम्बरी ने आकर तथा कुछ समय यहां ठहर कर प्रस्ताव किया—'राजा तारापीड कैसे हैं ? महारानी विलासवती कैसी हैं ? आर्य शकुनाश कैसे हैं ? उज्जयिनी नगरी कैसी है ? वह कितनी दूर है ? भारतवर्ष कैसा है' इत्यादि सभी बातें पूछी। इस प्रकार अनेक प्रकार की बातें करती हुई बहुत देर ठहर कर कादम्बरी केयूरक को चन्द्रापीड के समीप सोने का आदेश देकर अपने शयन करने के भवन में चली गई। वहां सफेद रेशमी वस्त्र बिछे हुए पलंग पर वह सोया।

पृष्ठ ४२—चन्द्रापीडोऽपि············आसनं भेजे।

शब्दार्थ—निरभिमानताम्—अभिमान हीनता। निष्कारण वत्सलताम्—बिना कारण के उत्पन्न स्नेह को। भावयन—विचार हुआ। सवाह्यमान चरण—केयूरक द्वारा पैर दबाते हुए। क्षणात्+इव—क्षणभर के समान। क्षपितवान्—बीत गई। क्षणदा—रात्रि। समुद्गते—उदय होने पर। सवितरि—सूर्य के प्रक्षालितमुखकमल (प्रक्षालित मुख कमल येन सः बहु०) मुख कमल धोये हुए। कृतसन्ध्यानमस्कृति—सन्ध्या पूजा पाठ किये हुए। प्रबुद्धा—जाग गई। इति—अवोचत्—इस प्रकार बोला। गत प्रतिनिवृत्तेन—जाकर लौटे हुए। अधस्तात्—नीचे। अंगणसीयवेविकायाम् आंगन के स्वच्छ चबूतरे पर। अवतिष्ठते—बैठी है। आवेदिते—बताने पर। आजगाम् आ गया। समुपसृत्य—समीप जाकर। विन्यस्तम्—बिछे हुए। आसनभेजे—आसय ग्रहण किया।

अर्थ—चन्द्रापीड ने भी उसी शिला तल पर कादम्वरी की अति गम्भीरता तथा अभिमान हीनता का महाश्वेता के कारण स्नेह का तथा गन्धर्व लोक की समृद्धशालिता का मन में विचार करते हुए केयूरक द्वारा पैर दबाया जाते हुए क्षण घर के समान रात्रि को व्यतीत कर दिया। तब सूर्य के उदय होने पर चन्द्रापीड शिलातल पर से उठकर मुख कमल को धोकर प्रातःकाल की पूजा में इष्ट देवता को नमस्कार करके तथा पान ग्रहण करके केयूरक से बोला—'केयूरक! देखो, देवी कादम्वरी जाग गई है अथवा नहीं? वह कहां है?' जाकर लौटे हुए केयूरक ने कहा—'महाराज, मन्दर नामक राजभवन के नीचे आंगन के सफेद चबूतरे पर महाश्वेता के साथ बैठी हुई है।' उसके ऐसा कहने पर चन्द्रापीड उनसे मिलने के लिये आ गया। देखकर और कादम्वरी के समीप जाकर उसी स्वच्छ देवी पर बिछे हुए आसन पर बैठ गया।

स्थित्वा च कंचित········भवति इति।

शब्दार्थ—वदनम्—मुख। मन्दस्मितम्—मन्द मुस्कान। तावता+एव—उतने से ही विदिताभिप्राया—अभिप्राय जाकर। जिगमिषति—जाना चाहते हैं। पृष्ठतः—पीछे। राजचक्रम्—राज परिवार। दुखम् आस्ते—दुखी

होगी । दूरस्थितयोः—दूर स्थित होने पर । कमलिनी कमलवान्धव्यो —कमलिनी और सूर्य के । स्थिरा+इयम् । आप्रलतात्—प्रलय काल तक । अभ्यानुज्ञानातु—अनुमति दो । भवति—आप ।

अर्थ—वहां कुछ समय ठहर कर महाश्वेता के मुख की ओर देख कर मन्द मन्द मुस्कराया । वह उतने से ही अभिप्राय समझकर कादम्बरी से बोली—'हे सखी ! राजकुमार चन्द्रापीड जाना चाहते हैं । इनके पीछे राज परिवार इनका समाचार न जानने के कारण दुखी होगा । तुम दोनों का प्रेम दूर रखने पर भी उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार कमलिनी और सूर्य का है । इसलिये आप अनुपति दो ।

पृष्ठ ४३—अथ कादम्बरी ······ निर्जगाम ।

शब्दार्थ—अनुरोधः—आग्रह । अभिधाय—कहकर । आहूय—बुलाकर । प्रापयतः—पहुंचा दो । स्वाम् भूमिम्—अपने देश । आदिवेश—आदेश दिया । बहुभाषिणः—बहुत बोलने पर । श्रद्दधाति—विश्वास करता है । स्मतव्य—स्मरण करने योग्य । निर्जगाम्—निकल गया ।

अर्थ—तब कादम्बरी ने कहा—मैं राजकुमार के आधीन हूं । इस विषय में आग्रह कसा ? ऐसा कहकर उसने गन्धर्व कुमारी को बुला कर अ देश दिया कि राजकुमार को अपने देश पहुंचा दो । चन्द्रापीड ने उठकर पहले महाश्वेता को और तब कादम्बरी को प्रणाम करके कहा—'हे देवी ! मैं क्या कहूं । बहुत बोलने वाले का ससार विश्वास नहीं करता । मुझ आप लोग परिजनों की कथा में स्मरण कीजियेगा ।' ऐसा कहकर राजकुमारी के भवन से निकल गया ।

कादम्बरी वर्जम्········स्वभवनं विवेश ।

शब्दार्थ—कादम्बरी वर्जम्—कादम्बरी को छोड़कर । अशेषः—सम्पूर्ण । व्रजन्तन्—जाते हुए । आवहिस्तोरणात्—बाहरी द्वार तक । अनुवव्राज—पीछे २ गया । विवृत्ते—लौट जाने पर । उपनीतम्—लाये हुए । वाजिनम्—घोड़े पर । निर्गत्य—निकल कर । प्राप्य—पहुंच कर । सन्निविष्टम्—स्थित, इन्द्रायुधखुरानुसारेण—इन्द्रयुध के खुर के चिन्हों के अनुसार । स्कन्धावारम्

—सेना का शिविर। निर्वर्तिताशेषकुमार (निर्वर्तितः अशेष कुमाराः येन सः बहुव्रीहि) सभी गन्धर्व कुमारों को लौटा देने वाला। विवेश—प्रविष्ट हुआ।

अर्थ—कादम्बरी के अतिरिक्त सभी कन्यायें जाते हुए चन्द्रापीड के पीछे बाहरी द्वार तक आयीं। कन्याओं के लौट जाने पर चन्द्रापीड केयूरक द्वारा लाये हुए घोड़े पर चढ़कर उन गन्धर्व कुमारों के साथ हेमकूट से निकलकर महाश्वेता के आश्रम में पहुंच कर अच्छोद नामक सरोवर के तट पर स्थित इन्द्रायुद्ध के खुर चिन्हों के अनुसार आये हुए अपनी सेना शिविर को देखा। सभी गन्धर्व कुमारों को लौटा कर चन्द्रापीड ने आनन्द कुतूहल तथा विस्मय से परिपूर्ण अपनी सेना के लोगों द्वारा प्रणाम किये जाते हुए अपने भवन में प्रवेश किया।

तत्र च वैशम्पायनेन..........केयूरक ददर्श।

शब्दार्थ—इति+अनया+एव—इमी। दिवसम् अनैपीत्—दिन को व्यतीत किया। चिन्तयतः—ध्यान करते हुए जाग्रत एवं जागते हुए ही। जगाम बीत गई। अपरेद्युः—दूसरे दिन। समुत्थिते—उठने पर। रवौ—सूर्य के। आस्थानमण्डपगतः—सभा मण्डप में स्थित।

अर्थ—वहां वैशम्पायन तथा पत्रलेखा के साथ 'ऐसी महाश्वेता है, ऐसी कादम्बरी है, ऐसी मदलेखा है, ऐसे केयूरक है,' इसी प्रकार की कथा करते हुए दिन को व्यतीत किया। उसी कादम्बरी का ध्यान करते हुए जागते में रात बीत गई। दूसरे दिन भगवान सूर्य के उदय होने पर जब वह सभा मण्डप में स्थित थे तभी अचानक प्रतिहारी के साथ प्रवेश करते हुए केयूरक को देखा।

पृष्ठ ४४—दूरादेव कृतप्रणामम्........नमस्कारेण मदनलेखा।

शब्दार्थ—एनम्—इसको। एहि—आओ। आलिलिंग—गले लगाया। समुपावेशयत्—बैठाया। पप्रच्छ—पूछा। कच्चित—क्या। कादम्बरी प्रहितानि (कादम्बर्या प्रहितानि तृतीया तत्पुरुष) कादम्बरी द्वारा भेजे हुए। अभिज्ञानानि—भेंट, चिन्ह। मरकतहरन्ति—मरकत के समान हरे। व्यपनीतत्वञ्चि—छीले हुए। पूंगीफलानि—सुपारी। शुककपोल पाण्डुनि—तोते के कपोल

समान पीले । ताम्बूलदलानि—पान के पत्ते । मृगमदामोद कस्तूरी की गन्ध । मलयत विलेपनम्—चन्दन का लेप । अर्पयति—पूजा करती है । कुशलवचसा—कुशल समाचार से ।

अर्थ–दूर से ही प्रणाम करते हुए केयूरक को 'आओ, आओ' ऐसा कहकर बड़े जोर से गले से लगा लिगा और अपने समीप बैठा लिया । तथा पूछा—'केयूरक ! बताओ सखीजनों सहित देवी कादम्बरी तथा महादेवी महाश्वेता कुशलपूर्वक तो है न ?' उसने कहा—'जिसके विषय में आप इस प्रकार पूछते हैं वह आज सकुशल है' ऐसा कहकर कादम्बरी द्वारा भेजी हुई भेंट की वस्तुओं को दिखाया—मरकत के समान हरे रंग की छिली हुई सुपारी, तोते के कपोल के समान पीले पान के पत्ते, कस्तूरी की सुन्दर गन्ध के समान चन्दन का लेप आदि । बोला—देवी कादम्बरी हाथ जोड़कर आपको प्रणाम करती है तथा महाश्वेता आपका कुशल समाचार पूछती है तथा मदलेखा नमस्कार करती है ।

सन्दिष्टम् च तव·········करे समर्पितवाम् ।

शब्दार्थ—सन्दिष्टम्—सन्देश दिया । चक्षुषोर्विषयम्—दृष्टि । स्पृहयन्ति—काम करते हैं । व्यतीत दिवसाय–बीते हुए दिनों की । विनिवृत्त महोत्सवम्—उत्सव समाप्त हो गया जैसा । वृत्तसकल परित्यागाम्–सब कुछ त्याग देने वाली । अकारणपक्षपातिनम् बिना कारण पक्षपात करने वाले । बलवत्—अत्यधिक । स्मेराननम्—मुस्कराते हुए मुख वाले । सोढ़व्या—सहन करनी चाहिये । कदर्थना—दारुण, दुख, पीडा । भवत्सुजनता (भवतः सुजनता षष्ठी तत्पु०) आपकी सज्जनता । जनयति—उत्पन्न करती है । संदेश प्रागल्भ्यम्—संदेश भेजने की धृष्टता । एष—यह । शयनीये – पलंग पर । विस्मृतः – भूला हुआ । प्रहितः—भेजा है । उत्तरीयपटान्नसयम् (उत्तरीयस्य पटान्तेन संयमम् बहुव्रीहि) दुपट्टे के छोर में बन्धा हुआ । विमुच्य—खोलकर चामरग्राहिण्या—चंमर धारण करने वाली । समर्पिमवान् सौंप दिया ।

अर्थ—महाश्वेता ने सन्देश दिया—वे लोग धन्य हैं जिन्हें तुम दृष्टि गोचर नहीं हो । सभी लोग बीते हुए दिनों के लिए लालायित है । आपके बिना चन्द्रराज की नगरी ऐसी सूनी लग रही है जैसे यहां का उत्सव समाप्त हो

गया हो। आप जानते हैं कि मैं सब कुछ त्याग कर चुकी हूं । फिर भी आक
कारण ही पक्षपात करने वाले आपको मेरा हृदय मिलना चाहता है। का हुई।
भी अत्यधिक अस्वस्थ है। आपके हंसमुख चेहरे को स्मरण करती है। बीतने
पुनः आगमन के द्वारा इसको प्रसन्न कीजिये। इस कारण कथा को
अवश्य ही स्वीकार करनी चाहिये । आपकी सज्जनता के कारण ही निक
सन्देश भेजने की धृष्टता रूपी अनुचित कार्य कर रही हू । 'आपके पल का
भूले हुये इस हार को भेजा है' ऐसा कहकर दुपट्टे के छोर में बन्धे हुली
सब कुछ वस्तु को खोलकर चमरधारिणी के साथ में अर्पित कर दिया। वहां

पृष्ठ ४५—चन्द्रापीडस्तु ······· कथा इति।

शब्दार्थ—शिरसिकृत्वा—सिर पर धारण करके। जग्राह ग्रहण किती
विलिप्य-लेप करके। आगृहीतताम्बूल (आसमन्तात् गृहीत आगृहीतः आ वन
ताम्बूलः येन सः बहुव्रीहि) पान लेकर। मन्दुराम् अस्तबल। प्रविवेश—
हो गया लीलामन्दम्—आनन्द से धीरे धीरे । मत्+निर्गमात्+आरभ्
मेरे निकलने के समय से लेकर । व्यापारेण—कार्य से । वासरम्—
अतिनीतवती—बिताया । आलापाः—वार्तालाप । अस्मत+आश्रि
हमसे सम्बन्धित।

अर्थ—चन्द्रापीड ने सब कुछ सम्मानपूर्वक सिर से लगाकर स्वयं
किया। उस चन्दन के लेप को शरीर में लगाकर हार को गले में धारण
लिया। पान खाकर क्षणभर में उठकर वह केयूरक के साथ अस्तबल में
गया। वहां प्रवेश करके आनन्द पूर्वक मन्द मन्द तथा कुतूहल के साथ
हे केयूरक ! बताओ, मेरे आने के बाद से गन्धर्वराजकुल का क्या सम
है ? गन्धर्वराज पुत्री ने क्या किस प्रकार दिन को बताया ? सखियों
बातचीत हुई ? क्या मुझ से सम्बन्धित बाते भी वहां हुई थी।

केयूरकस्तु सर्वम् ······· अकरोत्।

शब्दार्थ—आचचक्षे—बताया। निर्गंगे त्वयि—आपके निकल जाने
सौधशिखरम्—महल के उपर। आलोकितवती—देखने लगी । तिरोहि
—दृष्टि से छिप जाने पर। सखेदम् (खेदेन सहितम्) दुख के साथ। अव
उतर कर। आगतवती—आ गई । स्थितवान्—ठहरे थे । उपेत्य—

आकर। भुक्तम्—भोजन किया था। सुप्तम्—सोये थे। पश्यन्ती—देखती हुई। क्षपितवती—विताया। दिवसापगमे (दिवसस्य अपगमे षष्टी तत्पु०) दिन बीतने पर। मणि वेशमनि—मणि के भवन में। आहारम् - भोजन।

अर्थ—केयूरक ने सब कुछ बता दिया—'महाराज? सुनिये, आपके निकल जाने पर देवी कादम्बरी महल के ऊपर चली गई और आपके जाने का मार्ग देखने लगी। आपके दृष्टि से ओझल हो जाने पर खेदपूर्वक उतर कर उसी क्रीडा पर्वत पर आ गयी जहां आप ठहरे थे वहां पहुंच कर, आप यहां ठहरे थे, यहां स्नान किया था, यहां भोजन किया था, यहां सोये थे, इस प्रकार आपके हा स्थानों के चिन्हों को देखती हुई कादम्बरी ने दिन को व्यतीत किया। दिन बीत जाने पर महाश्वेता के प्रयत्न से उसी मणि के बने भवन में भोजन किया।

पृष्ठ ४५-४६—अस्तमिते च भगवति····· आदिष्टवती।

शब्दार्थ—अस्तमिते—अस्त होने पर। उदिते—उदय होने पर। चन्द्रमसि—चन्द्रमा के। शय्यागृहम्—सोने का भवन। अगात्—चली गई। शिरोवेदनयः—सिर की पीडा से। दारुणेन—भयंकर। अभिभूयमाना—पीडित होती हुई। क्षणदाम्—रात्रि को। अनैषीत्—बितायां। उपसि—प्रातःकाल। आहूय—बुला कर। वार्तालम्भार्थम—समाचार लाने लिए। आदिष्टवती—आदेश दिया।

अर्थ—भगवान सूर्य के अस्त और चन्द्रमा के उदय हो जाने पर वहीं कुछ समय तक ठहर कर शय्या गृह में चली गयी। वहां तीव्र सिर की पीडा तथा भयंकर कामाग्नि के ज्वर से पीडित होती हुई बड़े कष्ट से रात्रि को व्यतीत किया। प्रातःकाल मुझे बुलाकर आपका समाचार लाने के लिये आदेश दिया।

पृष्ठ ४६—चन्द्रापीड ······ हेमकूटं ययौ।

शब्दार्थ—आकर्ण्य—सुनकर। जिगमिषुः—जाने की इच्छा करता हुआ। निर्ययौ—निकला। आरोपित पर्याणम्—जीन रखे हुए। पश्चात्—पीछे। आरोप्य—बैठाकर। स्कन्धावरे—सेना के शिविर में। स्थापयित्वा—रख कर। अन्यतुरगारूढेन—दूसरे घोड़े पर सवार। ययौ—चला गया।

अर्थ—चन्द्रापीड उसे सुनकर जाने की इच्छा करता हुआ "घोड़ा" ऐसा बोलता हुआ भवन से निकल गया। जीन वान्धे हुए इन्द्रायुद्ध पर चढ़ कर, अपने पीछे पत्रलेखा को बैठा कर तथा वैशम्पायन को सेना के शिविर में रखकर दूसरे घोड़े पर सवार केयूरक के साथ हेमकूट पर चला गया।

आसाद्य कादम्बरी·············व्यलोकयत्।

शब्दार्थ—आसाद्य—पहुंच कर। अवतीर्य—उतर कर। द्वारपालर्पित-तुरंग—द्वारपाल को घोड़ा देकर। कादम्बरी प्रथम दर्शन कुतूहलिन्या (कादम्बर्या प्रथम दर्शने कुतूहलिनी या तया बहूब्रीहि) कादम्बरी को पहली बार देखने के लिवे उत्सुक। क्व—कहां। सम्मुखागम्—सामने आये हुए। अन्यतम्—एक। वर्षवरम्—नपुंसक को। अप्राक्षीत्—पूछा। अधस्तात—नीचे। दीर्घिकातीरे—तालाब के किनारे। विरचितम्—बने हुए। अध्यास्ते—बैठी हैं। उपदिश्यमानवर्त्मा—मार्ग दिखाया जाने वाला। आससाद—पहुंचा। एकदेशे—एक भाग में। सखीकदम्बक परिवृताम्—सखियों के समूह से घिरी हुई। मृणालमण्डपिकायाः—कमल की डंठल से बने मण्डप के तले—नीचे। अधिशयानम्—सोयी हुई। व्यलोकयत्—देखा।

अर्थ—कादम्बरी के भवन के द्वार पर पहुंच कर, उतर कर द्वारपाल को घोड़ा देकर कादम्बरी को पहली बार देखने के कारण उत्सुकता से भरी हुई पत्रलेखा के साथ प्रवेश करके सामने आये एक नपुंसक से पूछा—'देवी कादम्बरी कहां है।' उसने प्रणाम करते हुए कहा महाराज!' क्रीड़ा पर्वतक के नीचे कमल वन के तालाब के किनारे हुए हिमगृह में बैठी है' ऐसा कहने पर केयूरक द्वारा मार्ग दिखाया जाने वाला चन्द्रापीड हिमगृह के मध्य भाग में पहुंचा। उसके एक भाग में सखियों के समूह से घिरी हुई कादम्बरी को कमल की डंठलों से बने हुए मण्डप के नीचे फूलों की शय्या पर सोये हुवे देखा।

पृष्ठ ४७— अथ सा·········क्षितावेव उपाविशत्।

शब्दार्थ—आपतन्तम्—आते हुए। उत्तस्थौ—उठ गई। समुपसृत्य—समीप जाकर। पूर्ववत्—पहले के समान। प्रणाम पुरस्सरम्—प्रणाम के

णाय। दर्शितविनयः (दर्शितः येन सः बहुव्रीहि) विनय दिखाता हुआ। प्राण- नाम्—प्रणाम किया। कृतप्रतिप्रणामायाम्—प्रणाम करके उत्तर में प्रणाम करते पर। समुपविष्टायाम्—बैठने पर। प्रतिहार्या—प्रतिहारी द्वारा। सपुप- नीताम्—लायी हुई। जाम्बूनदमयीम्—सोने की बनी। आसन्दिका—आसन, कुर्सी। उत्सार्य—हटा कर। क्षितौ+एव—पृथ्वी पर ही। उपाविशत्—बैठ गयी।

अर्थ—इस के पश्चात् कादम्बरी दूर से सामने आते हुए उस चन्द्रापीड को देखकर उठ खड़ी हुई। चन्द्रापीड विनय दिखाते हुए पहले के समान समीप जाकर महाश्वेता को प्रणाम करने के साथ कादम्बरी को प्रणाम किया। प्रणाम के उत्तर में प्रणाम करके उसी फलों के विस्तर पर बैठ जाने पर प्रतिहारी द्वारा लाये हुए सोने के आसन को पैर से हटाकर भूमि पर ही बैठ गई।

अथ केयूरक.............करतलेन पस्पर्श।

शब्दार्थ—प्रसादभूमिः—कृपा पात्र। ताम्बूलकरंकवाहिनी—पानदान धारण करने वाली। अदर्शयत्—दिखाया। मानुषीषु—मनुष्यों में। प्रजापतेः —ब्रह्मा का। चिन्तयाम्बभूव—सोचने लगी। एहि+एहि—आओ आओ। आहूय—बुलाकर। आत्मनः—अपना। समुपावेशयत्—बैठाया। उपारूढ- प्रीत्यतिशया—अत्यधिक प्रेम उत्पन्न हो जाने के कारण। मुहुर्मुहु—बराबर। एनाम्—इसको। करतलेन—हाथ से। पस्पर्श स्पर्श किया।

अर्थ—इसके पश्चात् केयूरक ने कहा—'हे देवी! महाराज चन्द्रापीड की कृपापात्र यह पत्रलेखा नाम की पान का पात्र धारण करने वाली है। ऐसा कहकर पत्रलेखा को दिखाया! तब कादम्बरी उसको देखकर यह सोचने लगी 'मनुष्यों के प्रति ब्रह्मा का पक्षपात आश्चर्यजनक है।' उसके प्रणाम करने पर कादम्बरी ने 'आओ आओ' यह कर उसे उसे बुला कर अपने समीप बैठाया दर्शन मात्र से अत्यधिक प्रेम उत्पन्न हो जाने के कारण बार बार उसको हाथ से स्पर्श किया।

चन्द्रापीडस्तु........... भवसीम कर्तुम् इति।

शब्दार्थ—तदवस्थाम्—वैसी अवस्था में। निपुण+आलापेन—चतुराई

पूर्ण वार्तालाप से । कामगतिम—काम वासना । निमित्ती कृत्य—कारण। प्रवृत्त:—लगा हुआ । व्याधि:—रोग । कुसुमेपु पीड़या—फूलों पर पीड़ा के साथ । अवेक्ष्य—देखकर । दूयते—दुखी होता है । देहदानेन—शरीर त्याग करके । भवतीम्—आपको ।

अर्थ—चन्द्रापीड ने चित्ररथ की पुत्री कादम्बरी को वैसी दशा में देखकर चतुराई पूर्ण वार्तालाप से पूछा—हे देवी ! मैं यह जानता हूं कि कामवासना के कारण आपको यह रोग लगा है। फूलों के ऊपर भी पीड़ा के साथ पड़ी हुई आपको देखकर मेरा हृदय दुखी होता है। मैं अपना शरीर बलिदान करके भी आपको स्वस्थ करना चाहता हूं ।

कादम्बरी तु तम्·········प्राणसंधारणमस्या: इति ।

शब्दार्थ—अव्यक्तव्याहारसूचितम्—अस्पष्ट रूप में आकृति से प्रकट होने वाले। अर्थम्—विषय । शालीनता—शिष्टाचार । अवलम्बमाना—धारण करती हुई। तूष्णीम—मौन । कुमारभावोपेताया:—राजकुमार के विचारों में डूबी हुई । दारुण—कठोर। मृणालिन्या:—कमलिनी का । किसलयम्—कोमल नया पत्ता। हुताशनायते—अग्नि के समान कार्य करता है । ज्योत्सेना—चांदनी । आतापायते—धूप का काम करती है। धीरत्वम्—धैर्य । प्राण-संधारण—प्राणों को धारण करना ।

अर्थ—कादम्बरी उस चन्द्रापीड के अस्पष्ट आकृति से सूचित होने वाली सम्पूर्ण बात को मन में जानकर भी शिष्टाचार के कारण मौन ही रही। तब वदलेखा से उत्तर दिया—'हे राजकुमार ! क्या बताऊं। आपके ध्यान में मग्न इस सखी को भयकर तथा अवर्णनीय कष्ट है । कमलिनी का किसलय भी अग्नि के समान कार्य करता है । चांदनी भी धूप सी मालूम पड़ती है। धैर्य ही एक मात्र इनके प्राण धारण का उपाय है ।

पृष्ठ ४८—चन्द्रापीडोऽपि ·· ······ यास्यति इति ।

शब्दार्थ—उभयथा—दोनों प्रकार से। घटमानार्थ—प्राप्तार्थ, घटित होने के कारण । सन्देह दोलाधिरूढ़ेन सन्देह के चलायमान । प्रीति+उपचय-चतुराभि:—प्रेम बढ़ने के कारण अच्छी लगने वाली । महान्तम् कालम्—बहुत समय। महता बड़ा। [illegible] युक्त करके। स्कन्धावारागमनाय

(स्कन्धावारंगमनाय द्वितीया तत्पु०) स्कन्धावार में जाने के लिए । निर्ययौ—निकला आसरुक्षन्तम्—चढ़ने की इच्छा करने वाले, आगत्य—आकर, अभिहितवान—कहा है, प्रथमदर्शयजनित प्रीति—पहली वार देखने से प्रीति उत्पन्न हो जाने के कारण, निवर्त्यमानम्—लौटाना, यास्यति—जायेगी ।

अर्थ—चन्द्रापीड दोनों ओर घटित होने के कारण सन्देह पूर्ण मन से महाश्वेता के साथ प्रेम बढ़ जाने के कारण अच्छी लगने वाली बातें करता हुआ वहुत देर तक वहां ठहर कर फिर वडे प्रयत्न से अपने को मुक्त करके स्कन्धावार दे जानने के लिए कादम्वरी के भवन से निकला । उसके निकल कर घोड़े पर चढ़ने की इच्छा करते ही पीछे से केयूरक ने आकर कहा—'हे राजकुमार ! मदलेखा निवेदन करती है कि देवी कादम्वरी प्रथम दर्शन के कारण प्रेम उत्पन्न हो जाने पत्रलेखा को लौटाने की प्रार्थना करती है । वह बाद में चली जायेगी ।

तदाकर्ण्य चन्द्रापीड..............सर्वान्त पुरं: इति ।

शब्दाथ—तत्+आकर्ण्य—उसको सुनकर, अनुगृह्णाति—कृपा करती है, देवी प्रसाद:—देवी की कृपा, आजगाम्—आ गया । प्रविशन+एव—प्रवेश करते ही । लेखहारक—पत्र जाने वाले को, आद्रक्षीत्—देखा, धृततुरंगम: (धृत: तुरंगमय: यस्य स: वह०) जिसका घोड़ा धारण किया गया । प्रीति-विस्फारितेन—प्रेम से फैली हुई, अग—सेवक, परिजनेन—सेवकों के साथ । सर्वान्त:पुरं—सभी राजवन के सम्बन्धी लोगों के साथ ।

अर्थ—उसे सुनकर चन्द्रापीड ने कहा—'पत्रलेखा धन्य है जिस पर इस प्रकार अनुग्रह करती है । देवी की कृपा दुर्लभ हैं । ले जाओ ।' ऐसा कहकर अपनी सेना के शिविर में आ गया । प्रवेश करते ही पिता के समीप से आये हुए पत्रवाहक को देखा । घोड़ा छोड़कर प्रीति से फैली हुई आंखों से चन्द्रापीड ने दूर से ही पूछा—'सेवक ! क्या पिता जी सभी परिजनों के साथ और माता जी राजभवन के सभी व्यक्तियों के साथ सकुशल हैं ।'

पृष्ठ ३९—अथासौ उपसृत्य.........अवाचयत् ।

शब्दार्थ—उपसृत्य—समीप आकर, अर्पयामास—अर्पित किया, उन्मुच्य

—खोलकर, पपाठ—पढ़ा, उज्जयिनीतः—उज्जैन से, परममाहेश्वरः (परम-श्चासौ माहेश्वर कर्मधारय) शिवजी के परम भक्त, सर्वसम्पादय—सभी सम्पत्तियों के, आयतनम्—भंडार, उत्तमांगे—सिर पर, चुम्बन—चूमना हुआ, नन्दयति—प्रसन्न होता है, कियान्+अपि—कितनी ही, दृष्टस्यगतः—देखे हुए बीत गया, न—हमारा, लेखवाचनविरति—पत्र पढ़ते ही, प्रयाण-कालताम्—प्रस्थान का समय, नेतव्या—ले जाना चाहिये, आरम्भ कर देना चाहिये। शुकनास प्रेषित—शुकनास द्वारा भेजे हुए। अनुम्+एव+अर्थम्—इसी बात को, अवाचयत्—पढ़ा।

अर्थ—तब उसने समीप जाकर प्रणाम करने के बाद कहा—'हे देव! जैसी आज्ञा' ऐसा कह कर दो पत्र भेंट किये। राजकुमार ने उन्हें सिर से लगाकर स्वयं ही इसे खोलकर पढ़ा—'स्वस्ति उज्जयिनी से शिव के परम भक्त महाराज तारापीड सब प्रकार की सम्पत्तियों के भण्डार चन्द्रापीड को सिर से चूमकर आनन्दित होती है। प्रजा कुशलपूर्वक है। आपको देखे बहुत समय हो गया है। हमारा हृदय अत्यधिक व्याकुल है। इसलिये लेख पढ़ते ही प्रस्थान कर दीजिये। शुकनास द्वारा भेजे हुए दूसरे पत्र में भी उसने इसी बात को पढ़ा।

वैशम्पायनोऽपि............पृच्छन्न प्रतस्थे।

शब्दार्थ—अपरम्—दूसरा, अभिन्नार्थ—एक सी बात बोला, अदर्शयत्—दिखाया, तुरंगाधिरूढ़—घोड़े पर सवार, प्रयाणपटहम्—प्रस्थान का बिगुल, अवादयत्—बजाया, महाबलाधिकृतम्—सेनापति को, आदिदेश—आदेश दिया, भवता—आप आगन्तव्यम्—आना चाहिये, नियतम्—निश्चित आदाय—लेकर, एतावतीम्—इतनी, तामुखेन (तस्य मुखेन षष्ठी तत्पुरुष) उसके मुख से, विज्ञाप्या—बता देना, गरीयसी—महान, गुरोः—गुरुजन की, गतः+अस्मि—चला गया हूं, इदानीम्—अब, स्मर्तव्य—स्मरण करने योग्य, परिजन कथासु—परिजनों की कथा में, जीवन्—जीवित रहता हुआ, देवी चरणारविन्दनानन्दम्—देवी कादम्बरी के चरण कमलों की वदना का आनन्द अननुभूय—बिना भोगे हुए, आदिश्य—आदेश देकर, स्कन्धावारमरे—सेना के पड़ाव का भार, नियुज्य—नियुक्त करके तथारूढ़—वैसे ही सवार, ससैन्ये

—सेना सहित, पृच्छत्—पूछता हुआ। प्रतस्थे प्रस्थान किया।

अर्थ—वैशम्पायन ने भी समीप जाकर अपना दूसरा पत्र जिसमें वैसी ही बात लिखी हुई थी चन्द्रापीड को दिखाया। उसने 'जैसी पिता जी की आज्ञा' ऐसा कह कर उसी प्रकार घोड़े पर सवार हुए प्रस्थान का विगुल बजा दिया। समीप स्थित मेघनाथ नामक सेनापति को आदेश दिया—'आप पत्रलेखा के साथ आना। निश्चय ही केयूरक उसे लेकर वहां तक आयेगा। उसके द्वारा देवी कादम्बरी को कहला देना कि पिता जी की आज्ञा महान थी। इसलिये इस समय उज्जयिनी चला गया हूं। मुझे परिजनों की कथा में स्मरण कीजियेगा। जीवित रहा तो चन्द्रापीड देवी के चरण कमलों की वन्दना करने का सुख विना प्राप्त किये नहीं रहेगा। ऐसा आनेश वेकर उस वैशापायन को सेना के पडाव में नियुक्त करके तथा स्वयं उसी प्रकार घोड़े पर सवार होकर सेना सहित पत्रवाहक से उज्जयिनी का मार्ग पूछता हुआ चल पड़ा।

पृष्ठ ५०—क्रमेण च············ददर्श।

शब्दार्थ—अतिप्रवृद्धपादपया (अति प्रवृद्धा पादपाः यत्र तया बहुव्रीहि) बहुत बढ़े हुए पेड़ों वाले। वनगजपातितपादप परिहारने—जंगली हाथियों द्वारा गिराये हुए पेड़ों के कारण वक्रीकृत मार्गया—टेढ़े वने मार्ग वाला। पत्रसंकरकषाय गिरिनदीजलया—पत्रों से मिले होने के कारण कसैसे जल वाली नदी से युक्त। शून्यया—सुनसान। अटव्या—वन से। परिणतरविबिम्बे सूर्य के अस्त हो जाने पर। सन्ध्यारुणातते—सायंकालीन—लाल धूप में। दूसरे दिन में। रक्तचन्दनतरोः—लाल चन्दन के पेड़ के। सरपरिशितः पिण्डरिभे—तुरन्त काटे हुए मांस पिण्ड के समान। अलक्तकैः—आलता, लाल रग। आर्द्रीकृत—भिगोया हुआ। ददर्श—देखा।

अर्थ—क्रमशः बहुत बढ़े हुए पेड़ों से युक्त, जंगली हाथियों द्वारा गिराये जाने के कारण टेढ़ मार्ग वाले तथा पत्रों के कारण कसैले जल वाली पर्वतीय नदियों से युक्त तथा दिनों में सुनसान रहने वाले वन में जाकर, सूर्य के अस्त होने के कारण सायंकालीन लाल धूप के लाल दिखाई पड़ने वाले चन्दन के

पेड़ के ऊपर बन्धे हुए तुरन्त काटे हुए मांस के समान लाल आलता से रंगे हुए बहुत बड़े झण्डे को दूर से ही देखा।

तदभिमुखश्च.........आवासम् अरोचयत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—तदभिमुखः—उसके सामने। कंचित् अध्वानम्—कुछ मार्ग। केतकीसूचीखण्डपाण्डुरेण (केतक्या सूचिखण्डः केतकीसूचिखण्डः तद्वत पाण्डुरेण) केतकी के फूल के समान पीला। वनद्विरददन्तकपाटेन (वन्याः ये द्विरदाः वन द्विरदाः तेषा दन्ताः वनद्विरददन्ता तेषाम् कपाटेन तत्पुरुष) जंगली हाथियों के दांतों से बने किवाड़। परिवृताम्—युक्त। लोहतोरणेन—लोहे के बने मुख्य द्वार से। सनाथीकृतद्वारदेशाम्—युक्त द्वार वाला। लोहमहिषेण—लोहे के बने भैंसे से। अध्यासितशिलावेदिकाम्—विराजित शिला वेदी वाला। निसंस्कारतया—असभ्य होने के कारण। यत्किंचितकारिणा—जो कुछ करने वाले। खञ्जतया—लंगडा होने के कारण। संचारिणा—चलने वाला। बधिरतया—बहरा होने क कार। संज्ञाव्यवहारिणा—संकेत से व्यवहार करने वाला। लम्बोदरतया—बड़ा पेट होने के कारण। प्रभूत-आहारिणा—बहुत खाने वाला। विस्फोटकव्रणविन्दुभिः—चेचक के चिन्हों से युक्त। कल्माषितसकल शरीरेण कलुषित शरीर वाला। अभुक्तकाल-कम्बलखण्डेन काले कम्बल के टुकड़े को न छोडने वाला। जरद् प्रविड-धार्मिकम्—द्रविड़ देश के बूढ़ें धर्मात्मा को। अधिष्ठिताताम्—बैठे हुए। चाण्डिका वसतिम्—चण्डी देवी का मन्दिर। आवासम्—निवास। अरोचयत्—अच्छा लगा।

अर्थ—उसके सामने कुछ दूर जाकर केतकी के फूल के पीले जंगली हाथी दांत के किवाड़ों वाले लोहे के बने मुख्य द्वार वाले, लोहे के भैंसे से विराजित शिलावेदी वाले चण्डी देवी के मन्दिर को देखा जहां एक ऐसा द्रविड़ देश का बूढ़ा धर्मात्मा बैठा हुआ था जो असभ्य होने के कारण कुछ कुछ कर रहा था, लगड़ा होने के कारण धीरे धीरे चलता था, बहरा होने के कारण संकेत से व्यवहार करता था, बड़ा पेट होने के कारण बहुत खाने वाला प्रतीत होता था, चेचक के चिन्हों से जिसका सम्पुर्ण शरीर कलुषित हो गया था, तब जो क्षण भर के लिए भी काले कम्बल के टुकड़े को नहीं छोड़ता था। उसी

मन्दिर में उसने निवास करना अच्छा समझा।

अवतीर्यतुरंगात्............स्वयमेव पप्रच्छ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अवतीर्य—उतर कर। तुरंगात्—घोड़े से। भक्ति प्रवणेन—भक्ति पूर्वक। चेतसा—चित्त से। प्रणनाम्—प्रणाम किया। प्रशस्तदेवतोदर्शनकुतूहलेन—श्रेष्ठ देवता के दर्शन की उत्सुकता से युक्त। न्यवारयत—रोका। सार्धम्—साथ। प्रारब्धकलहान्—झगड़ा आरम्भ करने वाले। उपहसतः—हंसते हुए। उपसान्त्वनाः—सान्त्वना के वचनों से। प्रशमम्—शान्ति। उपनीय—प्राप्त करा कर। कलत्रम्—पत्नी। अपत्यानि—सन्तान। प्रव्रज्यावाः - सन्यासी होने का। पप्रच्छ—पूछा।

अर्थ—तब घोड़े से उतर कर तथा वहां प्रवेश करके भक्ति पूर्ण चित्त से उसे प्रणाम किया। प्रदक्षिण तथा प्रणाम करके श्रेष्ठ देवता के दर्शन की उत्सुकता से घूमते हुए उसने उस द्रविड़ देश धार्मिक को देखा और उसके साथ झगड़ा आरम्भ करने वाले तथा उसका उपहास करने वाले सैनिकों को रोका। समझा बुझा कर उसे किसी प्रकार शान्त करके उन्होंने उससे क्रमशः जन्मभूमि, जाति। विद्या, पत्नी, सन्तान, सम्पत्ति, आयु तथा सन्यासी होने का कारण पूछा।

पृष्ठश्चासौ.........अनयत निशाय (पृष्ठ ५१)

शब्दार्थ—अवर्णयत्—बताया। अतीत—पुराना। सुतराम—अत्यधिक। अरज्यत्—प्रसन्न किया। मनोविनोदताम्—मन को प्रसन्न करता हुआ। अयात् प्राप्त हुआ। सत्तप्तौ—सूर्य। शखावसक्तपर्याणेषु—शाखाओं पर घोड़े की जीन बांध कर। पुरोनिखातकुन्तयष्ठि संयतेष—सामने गड़े हुए भाले से बांध कर। सुषुप्सति—सोने की इच्छा करने वाले। सयतस्य—बन्धे हुए। पुरः—सामने। परिकल्पितम्—तैयार किया हुआ। निषण्णस्य वैठे हुए। पस्पर्श—स्पर्श किया। अनुपजात निद्रः (न उपजाता निद्रा यस्य सः बहुव्रीहि) निद्रा न प्राप्त। अनयत् निशाम्—रात्रि को व्यतीत किया।

अर्थ—पूछने पर उसने अपने विषय में बताया। उसने अपने वीते हुए शौर्य, सौन्दर्य सम्पत्ति आदि का वर्णन करते हुए राजकुमार के मन को आनन्दित किया। उसके चरित्र को सुनकर कादम्बरी के विरह से व्याकुल

मन वाले चन्द्रापीड का मन बड़ा प्रसन्न हुआ । भगवान् सूर्य के अस्त होने पर पेड़ की शाखा पर जीन बांध कर सामने गडे हुए भाले से घोड़े को बाँध कर बहुत दूर तक चलने के कारण थके हुए सैनिकों के सोने की इच्छा करने पर चन्द्रापीड सेवकों द्वारा एक भाग में तैयार किए हुए बिस्तर पर सोने के लिये चला गया । बिस्तर पर बैठे हुए चन्द्रापीड के हृदय में दुख का भाव उत्पन्न होने लगा । इसलि एसने बिना सोये ही रात्रि को व्यतीत किया ।

उषसि च उत्थाय·········· द्रष्टुम् आययौ ।

शब्दार्थ—उषसि—प्रात.काल । धनविसरैः—धन दान से । पुरयित्वा—पूरा करके । कृतवमतिः—निवास करने वाला । अल्पैः+एए+आहोभिः—थोड़े ही दिनों में । पौराणाम्—नगर वासियों का । प्रतीच्छन्—स्वीकार करता हुआ । विवेश—प्रविष्ट हुआ । अवतीय—उतर कर । वाजिनः—घोड़े पर से । मौलिना—मस्तक से । एहि+एहि—आओ, आओ । आहूय—बुला कर । उपगूढ़ः—आलिंगन किया हुआ । अनीयत—ले जाया गया । प्रत्युद्गम्य—स्वागत करके । दिग्विजयसम्वद्धाभिः—दिग् विजय से सम्बन्ध । आययौ—आ गया ।

अर्थ—प्रात.काल उठकर उस बूढ़े धार्मिक की कामना को धन दान द्वारा पूरा करके सुन्दर सुन्दर स्थानों में निवास करता हुआ थोड़े ही दिनों में उज्जयिनी पहुंच गया । वहां नगरवासियों के प्रमाणों को स्वीकार करता हुआ नगर में प्रविष्ट हुआ । पिता को दूर स ही देखकर घोड़े पर से उतर कर प्रणाम करने के लिये नीचे सिर झुकाया । इसके पश्चात् दोनों भुजा फैलाते हुए पिता के द्वारा 'आओ आओ' ऐसा कहकर बहुत देर तक उसे गले से लगाया और हाथ पकड़ कर विलासवती के भवन में ले गया । उसके द्वारा भी उसी प्रकार खड़े होकर उसके आगमन का स्वागत किये जाने पर वह दिग्विजय से सम्वन्धित कथायें कहता हुआ कुछ देर तक वहां ठहर कर शुकनाश का दर्शन करने के लिएं आ गया ।

पृष्ठ ५२—तत्रापि अमुनैव·········विवेश ।

शब्दार्थ—अमुना+एव—इसी । निवेद्य—निवेदन करके । स्कन्धावारवर्तिनम्—स्कन्धावार में स्थित । निखर्तयत्—समाप्त किया । अपराह ने—

दिन के दूसरे भाग में । अयासीत्—चला गया । रणरणकखिद्यमानमनस—चिन्ता से दुखी मन वाला । अवन्तिनगरम्—उज्जैन नगर । अमन्यत माना । गन्धवराज पुत्री वार्ताश्रवणोत्सुक: (गन्धवराजस्य पुत्री तस्या: वार्ता श्रवणाय य: उत्सुक: बहुव्रीहि) गन्धर्वराजपुत्री की बात सुनने के लिये उत्सुक । प्रति+पालयत् —प्रतीक्षा की । अागमे —बीतने पर । स्मितेन—मुस्कराहट से । प्रकाशित प्रीति: (प्रकाशित: प्रीति: येन स बहुव्रीहि) प्रेम प्रकट करने वाला । तत्रभवत्या— पूजनीया । सकल:—सम्पूर्ण । चर्यति—प्रणाम करती है । उक्तवतीम्—कहने वाली को । मन्दिराभ्यन्तरम् राजभवन के अन्दर । विवेश—चला गया ।

अर्थ—वहां भी इसी क्रम से बहुत समय तक ठहर कर तथा वैशम्पायन को सकुशल सेना के शिविर में स्थित बनाकर तथा मनोरमा का दर्शन करके विलावती के भवन में आकर स्नान आदि सभी कार्यों को समाप्त किया । वहां चिन्ता के कारण दुखी मन वाला चन्द्रापीड कादम्बरी के बिना न केवल उस उज्जैन नगरी को अपितु सम्पूर्ण पृथ्वी को सुनसान मानने लगा । तब कादम्बरी का सन्देश सुनने के लिए उत्सुक वह पत्रलेखा के आगमन की प्रतीक्षा करने वाली कुछ दिन बीतने पर मेघनाद पत्रलेखा को लेकर आया । वह नमस्कार करने वाली उस पत्रलेखा के प्रति दूर से ही मुस्कराहट से प्रेम प्रकट करता हुआ बोला—'हे पत्रलेखा ! पूजनीया महाश्वेता तथा कादम्बरी का कुशल समाचार बताओ । सभी परिजन कुशल पूर्वक तो हैं न !' वह बोली—'हे महाराज ! जैसी आपकी आज्ञा । 'कादम्बरी आपको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करती है' ऐसा बोलने वाली पत्रलेखा को लेकर वह राजभवन में चला गया ।

पृष्ठ ५२-५३—उपविश्य च तत्र········अध्यारोहता ।

शब्दार्थ—अप्राक्षीत्—पूछा । कियन्ति–कितना । कीदृश:–कैसा । गोष्ठय:—बातचीत । व्यजिज्ञपत्—बताया श्रूयताम्—सुनिये । समुपाविशम्—बैठ गई । अतिष्ठम्—ठहरा । नवनवान्—नये नये । अवलम्ब्य:—सहारा लेकर । सचरन्ती—चलती हुई ।

अर्थ—वहां बैठकर पूछा—'हे पत्रलेखा ! बताओ, तुम वहां कैसी रही ?

कितने दिन रही ? देवी की कैसी कृपा हुई ? उसके साथ तुम्हारी क्या बातें हुईं। क्या यह हमें भी याद करनी है। इस प्रकार पूछने पर उसने कहा—'हे देव ! सुनिये—आपके वहाँ से आ जाने पर मैं केयूरक के साथ लौट कर उसी प्रकार फूलों की शैया के समीप बैठ गई। मैं वहां कादम्बरी के साथ नये नये सुखों को भोगती रही। दिन के दूसरे भाग से वह मेरा ही सहारा लेकर घूमती हुई प्रमद वन की वेदिका पर स्थित हो गई।

तस्याम् च............आचारः इति।

शब्दार्थ—मणिस्थूणावस्टम्भा (मणौः स्थून: अवष्टम्भ: यस्या: सा बहुव्रीहि समास)—मणि के स्तम्भ का सहारा लेने वाली। स्थिता—खड़ी रही। व्याहर्तुम्—कहने के लिये। इच्छन्ती—इच्छा करती हुई। निःस्पन्दपक्ष्मणा—निश्चल पल्कों वाली। चक्षुषा—आंखों से। सुचिरम्—बहुत देर तक। व्यलोकयत—देखा। विदिताभिप्राया (विदित: अभिप्राय: यया तया बहुव्रीहि समास) अभिप्राय जानने वाली। आज्ञापय—आज्ञा दीजिये। विज्ञापिते—निवेदन करने पर। लज्जाकलित गद्‌गदा—लज्जा से गद्‌गद् होने वाली। यथमयि—किस प्रकार। व्यवहाराभिमुखम्—बोलने के लिये तत्पर।

अर्थ—वह वहीं मणि के खम्भे का सहारा लेकर खड़ी रही। घड़ी भर ठहर कर कुछ बोलने की इच्छा करती हुई उसने बहुत देर तक मेरे मुख की ओर देखा। मैंने उसका अभिप्राय जानते हुए 'आज्ञा कीजिये' ऐसा कहने पर लज्जा से भरी हुई वह किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से कुछ कहने के लिए पर लज्जा भरी हुई वह किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से कुछ कहने के लिए तत्पर हुई और मुझसे बोली ! पत्रलेखा ! दर्शन के समय से ही तुम मुझे प्रिय हो। न मालूम क्यों मेरा मन तुम्हारे ऊपर विश्वास करता है। मुझे अभी पिता ने किसी को देने का विचार किया और न माता ने। गुरुजनों द्वारा भी मुझे अनुमति नहीं मिली। राजकुमार चन्द्रापीड ने मुझे बलपूर्वक गुरुजनों द्वारा निन्दित करा दिया। बताओ, क्या महापुरुषों का यही आचरण है ?

अहं तु अविदित........निषिध्यते।

शब्दार्थ—अविदित वृत्तान्ततया (अविदित: वृत्तान्तः यया सा तया बहुव्रीहि समास) समाचार न जानने वाली। माता+इव—माता के समान। सविषादम्—

दुख के साथ । विज्ञायितवृत्त निवेदन किया । श्रोतुम्—सुनने के लिए । कृतम्—किया । अविनयेन—अविनय से, अशिष्टता से । खेदितम्—दुखी किया । कुमुदकोमलम्—कुमुद के समान कोमल । इति+एवम—इस प्रकार । पुनः—अवदत्—फिर बोली । आवेदयामि—बताती हूं । अवहिता—सावधानी पूर्वक । आगत्य+आगत्य—आ आ कर । मदन लेखाम (मदनस्य लेखान् षष्ठी तत्पुरुष समास)—कामदेव के लेखों को । प्रेषयति—भेजता है । एकाकिन्यः—अकेली का । परिष्वगम्—आलिगन । आचरति—करता है । मुखमारुतैः—(मुखस्य मारुतैः षष्ठी तत्पुरुष समास)—मुख की सांस से । कपोलों—गालों को । वीजयति—हवा करता है । मन्मथ मूढ़मानस (मन्मथेन मूढ़ मानमं यस्य स बहुव्रीहि समास) कामवासना के मूढ़ मन वाला । निषिध्यते —रोका जाये ।

अर्थ—मैंने वृत्तान्त न जानने के कारण भयभीत के समान दुख के साथ कहा—'हे देवी ! सुनना चाहती हूं । बताये महाराज चन्द्रापीड ने क्या किया ? कि अविनय ने उन्होंने आपके फूल के समान कोमल चित्त को दुख किया है ?' ऐसा कहने पर फिर बोली - 'सावधान होकर सुनो, मैं तुम्हें बताती हूं । वह प्रतिदिन स्वप्न में आकर सुन्दर प्रेप पत्र भेजते हैं । उपवनों में मुझे अकेली पाकर मेरा आलिगन करते हैं । शीतल मुख की वायु से मेरे गालों पर पंखा करते हैं । हे पत्रलेखा ! तुम्हीं बताओ कि मैं कामपीडा से व्याकुल मन वाले उनको किस प्रकार रोकूं ?

पृष्ठ ५४—ताम् एव वादिनीम्.........हृदयदयितस् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—वायिनीम्—बोलने वाली को । आकर्ण्य—सुन कर । प्रहर्ष निर्भरा (प्रकृष्टः हर्षः प्रहर्षः तेन निर्भरा तृतीया तत्पुरुष समास) —अत्यधिक हर्ष से भरी हुई । उद्दिश्य—उद्देश्य करके । आकृष्टा—आकर्षित हुई । मकरकेतुना—कामदेव के द्वारा । विचिन्त्य सोचकर । विहस्य—हस कर । यद्यवेम् (यदि+एवम्)—यदि ऐसा है । उत्सृज - छोडो । कोपम्— क्रोध को । न अर्हसि—योग्य नहीं है । कामापराधै (कामस्य अपराधैः षष्ठी तत्पुरुष समास)—कामवासना के अपराध से । दूषयितुम—दोष देने के लिए । अनाराधित प्रसन्नेन (न आराधित अनाराधितः अनाराधितः चासौ प्रसन्नः तेन

कर्मधारय समास) —बिना अराधना के प्रसन्न । कुसुमशरण कामदेव के द्वारा । ते—आपको । दत्तः—दिया । गुरुजनावकृष्यता —गुरुजनों द्वारा कहा जाना । कति—कितना । वृत्तावत्यः—वरण किया । अानर्थक—झूठा । तर्हि —तो । धर्म शास्त्रों पदिष्टः (धर्मशास्त्रेषु उपदिष्टः सप्तमी तत्पुरुष समास)— धर्मशास्त्रों में बताया हुआ । स्वयबरविधि स्वयंवर की विधि । स दश्व — सन्देश देकर । प्रेषय भेजिए । यामि—जाती हूं । अानयामि लाती हूं। हृदयदयितम (हृदयस्य दयितम् षष्ठी तत्पुरुष) —हृदय के स्वामी को ।

अर्थ—उसे ऐसा कहते हुए सुन कर आनन्दमग्न होकर मैंने सोचा— 'आओ ! कामदेव ने इसे चन्द्रापीड के प्रति आकर्षित किया है । ऐसा सोच कर मैं हंस कर बोली—'हे देवी ! यदि ऐसा है तो क्रोध न कीजिये । प्रसन्न होइये । कामदेव के अपराध के कारण राजकुमार चन्द्रापीड का दोष नहीं देना चाहिए । विना अपराधना किये ही प्रसन्न भगवान कामदेव ने आपको वरदान दिया हे । इस विषय में गुरुजनों को दोष देने से क्या लाभ है ? मैं आपको उनके विषय में कितना वताऊं जिन्होंने स्वय अपन पतियों का वरण किया है । यह बुरा नहीं है । धर्म शास्त्रों में भी स्वयंवर विधि बताई गई है। इसलिये प्रसन्न होइये और मुझे भेजिये । मैं आपके प्राणप्रिय को ले आती हूं।

पृष्ठ ५४—इत्येवम वादिनीम्...........अभवत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—इति+एवम—इस प्रकार । अव्यतिरिक्ता+ असि अभिन्न हो । गरीयसीत्—बड़ी भारी । ब्रवीमि कहती हूं । पश्यन्ती देखती हुई । संधारयामि—धारण करती हू । यद्ययम् (यदि—अयम्)— यदि यह । ग्रहः—आग्रह । साधय—पूरा करो । समीहितम् इच्छा को। अभिधाय—कहकर । व्यसर्जत्—छोड़ दिया, भेज दिया । विज्ञप्तः—बताया हुआ । 'धार प्रकृति'— धैर्यशाली । नितराम् —बहुत । पर्याकुल—व्याकुल।

अर्थ—ऐसा कहने पर मुझसे वोली—हे पत्रलेखा ! तुम मेरे हृदय से अभिन्न हो । मैं तुम्हारे प्रेम को जानती हू । तुम केवल प्रिय हो इसलिये ऐसा नहीं कहती हूं । तुम्हें देखकर ही जीवन धारण करती हूं फिर भी

यदि तुम्हारा यही आग्रह है तो जैसा चाहो करो । ऐसा कह कर मुझे भेज दिया । चन्द्रापीड ऐसा कहे जाने पर स्वभाव में धैर्यशाली होने पर भी अत्यधिक व्याकुल हो गये ।

पृष्ठ ५४—अत्रान्तरे ········· मे जीवितम् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अत्रान्तरे—इसी बीच में । प्रविष्य—प्रवेश करके । व्यज्ञापयत्—सूचित किया । समादिशति—आदेश देती है । श्रुतम—सुना है । पृष्ठत:—पीछे । स्थिता—ठहरी हुई । परागता—लौट आई है । तव+अपि—तुम्हारा भी । महती—बड़ा । वेला—समय । दृष्टस्य—देखे हुये । अनयासहित—इसके साथ । आगच्छ—आओ ।

अर्थ—इसी बीच प्रतिहारी ने प्रवेश करके किया—'हे राजकुमार ! देवी विलासवती आज्ञा देती है कि मैंने सुना है कि पीछे रुकी हुई पत्रलेखा फिर लौट आई है । आपसे मिले भी बहुत समय हो गया है । इसलिये उसके साथ ही आओ । चन्द्रापीड ने यह सुनकर मन में सोचा—'ओह ! मेरा हृदय सन्देह से भरा है ।'

पृष्ठ ५५ एव अम्बा ····· दिवसम् अनयत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—आकर्ण्य—सुनकर । चेतसि+अकरोत् मन में सोचा । सन्देह दोलाधिरूम् सन्देह के हिंडोले में सवार । जीवितम्—जीवन । निमेषम्+अपि—पल भर भी । अपश्यन्ती—न देखती हुई । दुःखम्+आस्ते—दुखी होती है । आगमन य—आने के लिए । निस्कारण वत्सलया—बिना कारण के स्नेह करने वाली । गरीयान—बड़ी । गन्धर्वराजा सुतानुराग: (गन्धर्वराज सुताया: अनुराग: षष्ठी तत्पुरुष समास)—गन्धर्वराज पुत्री शकुन्तला का प्रेम । दुत्यजा:—कठिनाई से छोड़ने योग्य । परिग्रह्या—ग्रहण करने योग्य । कालातिपातासहम्—विलम्ब को सहन न करने वाला । विप्नष्टमन्तरम्—बहुत अन्तर । चिन्तयन्—सोचते हुये । प्रतिहार्या प्रतिहारी द्वारा । अगाम्—चला गया । तोत्कण्ठम—उत्सुकता पूर्वक । अनयत्—व्यतीत किया ।

अर्थ—माता जी मुझे क्षण भर भी न देखकर दुखी हो जाती है । इधर

अकारण ही स्नेह करने वाली देवी कादम्बरी ने आने के लिये आज्ञा दे है। माता का स्नेह बलवान है। गन्धर्वराज पुत्री का अनुराग महान है। जन्मभूमि को छोड़ना बड़ा कठिन है। कादम्बरी को अनुगृहित करता है। मेरा मन विलम्ब को सहन नहीं करता है। हेमकूट और विन्ध्याचल की दूरी बहुत हैं। इस प्रकार विचार करते हुए ही प्रतिहारी द्वारा मार्ग दिखाया जाता चन्द्रापीड माता के समीप गया। वहीं उत्कण्ठा पूर्वक दिन को व्यतीत किया।

पृष्ठ ५५—एवमेव .... अतिष्ठन्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—दिवा—दिन। अकृतनिवृति शान्ति न पाता हुआ। आयास्यमानः—दुखी होता हुआ। मनसिजेन—कामदेव के द्वारा। स्तम्भयम्—रोकता हुआ। कतिपयेकु कुछ। वहिनर्गया:—नगरी से बाहर। अनुसरन्—अनुसरण करता हुआ। समुत्पन्न कुतूहल: (समुत्पन्न: कुतूहः यस्य सः बहुव्रीहि समास)—कुतूहल उत्पन्न हुआ। अतित्वरया—बड़ी शीघ्रता से तुरंगमान्—घोड़ों को। अद्राक्षीत्—देखा। परिज्ञानाय—पहचान के लिए। अन्यतम् - एक दूसरे को। प्राहिणीत्—भेजा। पयसा - जल से। उत्तीर्य—पार करके। आयतने—मन्दिर में। उरूदघ्नम्—जांघ तक गहरे। तत+प्रतिवार्ता—उसके उत्तर को। प्रतिपालयन्—प्रतीक्षा करती हुई।

अर्थ—इसी प्रकार दिन रात अशान्त चित्त चन्द्रापीड कामदेव द्वारा सताये जाने पर भी मर्यादावश अपने आपको रोकता हुआ किसी प्रकार कुछ दिन बीतने पर एक दिन नगर से बाहर निकल कर शिप्रा नदी के किनारे से जाते हुए चन्द्रापीड ने बहुत दूर से बड़े वेग से आते हुए बहुत से घोड़ों को देखा। देखकर कुतूहल उत्पन्न होने के कारण उसके ज्ञान के लिये एक दूसरे पुरुष को भेजा। स्वयं भी जांघ तक गहरे पानी में शिप्रा को पार करके भग-वान कार्तिकेय के मन्दिर में उसके उत्तर की प्रतीक्षा करता हुआ ठहर गया।

पृष्ठ ५६—तत्रस्थ एवं दूरादेव............सन्देशम् इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—तत्रस्थ—वहीं रहते हुए। अवतीर्य—उतर कर। आयन्तम्—आते हुए। विषाद+अशून्येन—दुख पूर्ण। अनक्षरम्—

बिना बताये ही । अ वेदयन्तम्-बनाने वाले । दर्शितप्रीतिः (दर्शितः प्रीतिः येन सः बहुव्रीहि समास) -प्रेम दिखाने वाले । आहूय--बुला कर । दोर्भ्याम्--भुजाओं से । पर्यष्वजत्--आलिंगन किया । उपसृत्य-समीप जाकर । अयासीत्--चला गया । निवर्तिताशेस दिवस करणीयः--दिन के सम्पूर्ण क्रिया कलापों को समाप्त कर । आहूय--बुलाकर ।

अर्थ--वहां स्थित ही चन्द्रापीड ने दूर से घोड़े पर से उतर कर आते हुए बिना बोले आकृति से दुखी दिखाई पड़ने वाले केयूरक को देखा । देख कर प्रीति प्रकट करते हुए 'आओ, आओ' ऐसा कहते हुए बुला कर दूर तक फैलाई हुई भुजाओं से उसका आलिंगन किया । मुक्त होकर उसके फिर नमस्कार करने पर उसके साथ अपने भवन में चला गया । वहां दिन का सम्पूर्ण कार्य समाप्त करके पत्रलेखा के साथ केयूरक को बुलाकर कहा--'केयूरक ! देवी कादम्बरी तथा महाश्वेता का सन्देश बताओ ।

पृष्ठ ५७--केयूरक पुनः............आश्रमम् अ.वत ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण--पुरः--सामने । सप्रश्रवम् -सम्मानपूर्वक । उपविश्व--बैठकर । सन्देशलवः+अपि--कोई भी सन्देश । प्रतिनिवृत्तम--लौटकर । यदा+एव--तभी । ऊर्ध्वम्--ऊपर । विलोक्य देखकर । दीर्घम्--लम्बी । निःश्वस्य--सांस लेकर । संनिर्वेदम्--दुख के साथ । तपसे--तपस्या के लिये ।

अर्थ--केयूरक ने नम्रतापूर्वक सामने बैठ कर बोला-'महाराज ! क्या बताऊं । मेरे पास देवी कादम्बरी तथा महाश्वेता का कोई भी सन्देश नहीं है । जैसे पत्रलेखा को मेघनाद के हाथ सौंप मैंने लौटाकर आपके उज्जयिनी जाने का समाचार बताया वैसे ही ऊपर देखकर लम्बी तथा गर्म सांस लेकर तथा दुख के साथ उठकर महाश्वेता फिर तपस्या करने के लिये अपने ही आश्रम में आ गई ।

पृष्ठ ५६--देव्यपि कादम्बरी ....उपागतोऽस्मि ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण--झटिति--तुरन्त । द्रुघनेन इव हता--हथौड़ा से मारी हुई के समान । निवारिताशेषपरिजन--प्रवेश (निवारितः अशेष

परिजनानां प्रवेश, यया सा बहुव्रीहि समास)––सभी परिजनों के प्रवेश को रोक देने वाली। निपत्य––पकड़कर। उत्तरीवामसा–दुपट्टे से। उत्तमागम्–सिर और मुख को। अवगुण्ठन–ढक कर। अस्यात्–ठहरी रही। परेद्यु:–दूसरे दिन। उपसृनम्–समीप गये हुए। ध्रियमाणेऽ+एव+भवत्सु–आप लोगों के जीवित रहते हुए भी।ईदृशीम्––ऐसी। अनुभवामि–अनुभव करती हूं। उपालभमानाना+इव–उलाहना देती हुई सी। पर्याकुलताम्–व्याकुल। दृष्टया–दृष्टि से। विलोकितवती–देखा। मन्यमान.–मानते हुए। आदिष्टम्–आदेश दिया हुआ। अविवेक एवं–बिना बताये ही। उपागतः–आ गया हूं।

अर्थ––देवी कादम्बरी भी जैसे उसके ऊपर घन का आघात हुआ हो, सभी परिजनों के प्रवेश को रोक कर अपने पलग पर पड़कर दुपट्टे से सिर को लपेट कर सारे दिन पड़ी रही। प्रातःकाल ही समीप गये हुए मुझ से बोली–"आप लोगों के रहते हुए मैं ऐसी दशा का भोग रही हूं। इस प्रकार उलाहना देती हुई वह व्याकुल दृष्टि से मुझे देखने लगी। इस प्रकार उस दुख देवी कादम्बरी द्वारा देखे जाने वाले मैंने यह जान कर कि मुझे जाने की अनुमति दे दी है उसे बिना बताये ही आपके चरणों में आ गया हु।

पृष्ठ ५७–देव ! भवत ....केरयूकम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण–भवत:–आपका। आरूढवान–सवार हो गया। मकर केतन,–कामदेव। इदनीम्–इस समय। आयामम्––व्याकुलता, कष्ट। त्वदर्थं –आपके लिये। अवलम्बय––सहारा लेकर। क्रियाताम्––कीजिए। सर्वम+एव+एतत––वह सब कुछ। मय्याख्यताम––(मयी+आख्यताम)–मुझे बताया। अधुना––अब। दिवसक्रम––गम्ये––अनेक दिनों में जाने योग्य। अध्वनि–मार्ग में। सम्भावयितुम––सम्मान करने के लिए। प्रयतातहे–प्रयत्न करते हैं। वदन्––बोलता हुआ। आदिदेश–आदेश दिया। विश्रान्तये––विश्राम के लिये।

अर्थ—हे महाराज ! आपके पहले आने के समय ही उसे कामदेव ने वशीभूत कर लिया। इस समय देवी कादम्बरी आपके लिए बहुत दूखी है।

इसलिये धैर्य धारण करके जाने का प्रयत्न किया। ऐसा निवेदन करने वाले केयूरक को चन्द्रापीड ने कहा--हे केयूरक ! पत्रलेखा ने यह सब कुछ मुझे बता दिया है। इस समय मार्ग अनेक दिनों में जाने योग्य होने के कारण मैं क्या करूं फिर भी देवी कादम्बरी को समानित करने का प्रयत्न करूंगा। इस प्रकार कहते हुए चन्द्रापीड ने केयूरक को विश्राम करने के लिये कहा।

पृष्ठ ५७—अत्रान्तरे भगवान········ क्षयम अगात।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—तिरदोधितिः—सूर्य। सजहार—समेट लिया। सहास्त्रम—अपनी सहस्त्र किरणों को। आरूढ़—चढ़ने पर। चन्द्रमसि—चन्द्रमा के। आत्मनः—अपना। समुद्दिश्य—विषय में। चिन्तयामास—सोचा। अवरोप्य—उतर कर। मयि+एव मेरे ऊपर ही। समारोपितः रहा है। अनाख्याय—बिना कहे। पदमपि—पग पर भी। निगन्तुम—निकलना, जाना। परापतति—लौटना है। व्यपदिश्य—बहाना करके। मोच-यामि—मुक्त करूं। मुंचतु—छोड़े। सुहात्साध्ये—मित्र द्वारा होने योग्य। एकाकी—अकेला। असनिहितः—समीप नहीं है। पार्श्वे—पास में। क्षया—रात्री। क्षयमअगात्—बीत गई।

अर्थ इसी बीच भगवान सूर्य अस्त हो गये भगवान चन्द्रमा के उदयगिरि के शिखर पर आरुढ़ होने पर अपने जाने के विषय में इस प्रकार सोचने लगा—पिता जी ने अपनी भुजाओं पर से राज्यभार उतार कर मेरे ऊपर रख दिया है। उनको बताये बिना एक पग भी जाया नहीं जा सकता है। मेरी सेना भी आज तक नहीं लौटी है। मैं कि बहाने से अपने को मुक्त कराऊ। अथवा माता जी और पिता जी मुझे कैसे जाने देंगे। मित्र की सहायता से सिद्ध होने वाले इस कार्य में मैं अकेले क्या करूं। वैसम्पायन भी समीप नहीं है। इस प्रकार उसके सोचते ही वह रात बीत गई।

पृष्ठ ५८—प्रातरेव········वैशम्पायनः इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—किवन्दतीम्—कहावत। शुश्रावः—सुना। परागत—लौट आई हुई। सिद्धिम—सफलता को। अवधारय—जानो।

अर्थ-प्रातःकाल ही मैंने अफवाह सुनी--कि सेना दशतुर तक लौट आई है। इसको सुनकर प्रसन्न चित्त मैंने केयूरक को कहा कि हे केयूरक ! अब

सफलता को प्राप्त हुई समझो । वैशम्पायन आ गया है ।

पृष्ठ ५८ शब्दार्थ—अपरम्—दूसरा । साधनीयम्—करूंगा । अकालक्षमा विलम्ब को सहन न करने वाली । प्रत्याशया—आशा से । धार्यते—धारण किया जाता है । देवागमनोत्सवम्—राजकुमार के आने का शुभ समाचार। इदानीम्+एव—अभी ही । अनुज्ञया—अनुमति से । व्यजिज्ञपत—बताया। साधु—ठीक । ईदृशी—ऐसी । प्राणसंधारणाय—प्राण धारण कराने के लिये, प्रत्ययार्थम्—विश्वास के लिये । यातु—जाये । आहूय—बुलाकर । अस्याम् भूमि—जहां तक । आदाय—लेकर । अनुपदम—पीछे पीछे । तुरंगमैः—घोड़े से ।

अर्थ--उसने उसे सुनकर कहा--हे देव ! मैं यहां रह कर क्या करूंगा। देवी कादम्बरी की शरीरावस्था विलम्ब को सहन नहीं कर सकती है । आशा से ही प्राण धारण किया जाता है । इसलिये आपके आगमन का शुभ समाचार बताने के लिये इसी समय जाने की अनुमति देने की कृपा कीजिये। ऐसा निवेदन किया । केयूरक द्वारा ऐसा कहने पर प्रसन्न चन्द्रापीड ने कहा-- तुमने ठीक ही सोचा कि स्थान और समय को दूसरा कौन जानता है । देवी को प्राण धारण कराने के लिये जाओ । मेरे आने का विश्वास दिलाने के लिए पत्रलेखा देवी कादम्बरी के समीप जाये । ऐसा कहकर मेघनाद को बुलाकर आदेश दिया--हे मेघनाद ! मैंने जहां पर पत्रलेखा को लाने के लिए तुम्हें ठहराया था वहां तक पत्रलेखा को लेकर केयूरक के साथ आगे आगे जाओ । मैं भी वैशम्पायन से मिलकर तुम्हारे पीछे पीछे ही घोड़े से आता हूं।

अथ च पत्रलेखाम्.........व्यसर्जयत् ।

शब्दार्थ—आहू—बुला कर । यान्त्या—जाती हुई । अध्वनि—मार्ग में । भावनीया—अनुभव न करना । शरीर संस्कारे—शरीर को ठीक रखने के कार्य में । आहारवेला—भोजन का समय । अतिक्रमणीया—बिताना, टालना । येनकेनचित्—जिस किसी । पथा—मार्ग से । यातव्यम्—जाना चाहिए । नियतम्—निश्चित । तद्+अवधानदानाय—उसका ध्यान रखने के लिए । सन्दिश्य—कहकर । यावत्—तक । सह+अनया—इसके साथ।

[अनु]—नयनाय—मुझे ले जाने के लिए। व्यसजयित्–भेज दिया।

अर्थ--इसके पश्चात् पत्रलेखा को बुलाकर कहा--'हे पत्रलेखा ! तुम [भी] जाती हुई मार्ग में मेरे विरह के दुख को अनुभव न करना। शरीर को [ठी]क रखने में उपेक्षा न करना। भोजन के समय को नहीं टालना। जिस [कि]सी अज्ञात मार्ग से मत जाना। मेरा जीवन भी तुम्हारे हाथ वश मे है। [इस]लिये तुम्हें निश्चित रूप से यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये।' ऐसा [क]हकर केयूरक को उसका ध्यान न रखने के लिए कहकर फिर कहा 'महा-[श्वे]ता के आश्रम तक तुम्हीं इसके साथ मुझेने ले के लिए आना। 'ऐसा आदेश [दे]कर भेज दिया।

पृष्ठ ५९ —निर्गतायाम् ·········· अलंघयत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण · निर्गतायाम्—निकल जाने पर। पादमूलम्—[च]रणों में। शकनासमुखेन—शुकनास के द्वारा · वैशम्पायन—प्रत्युद्गमनाथ (वैशम्पायनस्य प्रत्युद्गमनम् तस्मै षष्ठी तत्पुरुष समास)—वैशम्पायन के [स्व]ागत के लिए। कलघयत्—पार कर गया।

अर्थ--केयूरक के साथ पत्रलेखा के चले जाने पर पिता के समीप जाकर [शु]कनास के द्वारा वैशम्पायन का स्वागत करने के लिये मुक्त करवा कर [मा]ता के भवन में भोजन आदि करके उस दिन को तथा रात को दो पहरों को [मि]त्र से मिलने की उत्कण्ठा में जागते हुए ही व्यतीत करके रात के तीसरे [प्ह]र इन्द्रसुध पर सवार होकर बहुत बड़ी घुड़ सवार सेना के साथ नगरी से [नि]कल कर शिप्रा नदी को पार करके दशपुर जाने वाले मार्ग से चल पड़ा। [उ]सी रात के तीसरे पहर में उसने तीन योजन मार्ग पर कर लिया।

[अ]थ च उदयगिरि·········भवन्नः इति।

शब्दार्थ—सप्ताप्तौ—सूर्य के। अर्धगव्यूतिमात्र—आधे कोस तक। [आ]पातम् आई हुई। अद्राक्षीत्—देखा। जब विशेषग्राहिणा बहुत तेज [चल]ने वाले। सत्वरम्—तुरन्त। आसाद्य—पहुंच कर। क्व कहां। समम्+[ए]क एक साथ ही। अवतरतु—उतारे। यथा+अवस्थितम्—जैसा हुआ। [व]चना—वचन से ··· जैसे हृदय में शूल लगा हो। भूत्वा—[हो]कर। अप्रक्षीम्—पूछा। वृभम्—समाचार। उत्सृज्य—छोड़कर। आयाताः

—आ गये। भवन्तः—आप लोग।

अर्थ--इसके पश्चात भगवान सूर्य के उदयाचल पर विराजमाय होने पर आगे आधे कोस तक आई हुई अपनी सेना को देखा। बहुत तेज चलने वाले इन्द्रायुध से शी वहां पहुंच करग्र सेना में प्रवेश करके पूछा कि वैशम्पायन कहां है ? सेना के सभी मनुष्यों ने एक साथ ही कहा--'महाराज ! इस पेड़ के नीचे उतरे तब जैसा कुछ हुआ है वह हम आपको बताते हैं। चन्द्रापीड़ ने उस अत्यधिक कष्टदायक वचन से जैसे हृदय में शूल लग गया है फिर उनसे पुछा--उसका क्या समाचार है जो कहीं आया अथवा कहां ठहरा है ? आप लोंग उसे अकेला छोड़ कर क्यों लौट आये हैं।

पृष्ठ ६०—ते च एवम् ····· यधोमुखः तस्थौ।

शब्दार्थ—पृष्टाः - पूछे हुए। भवदिभ—आप लोगों द्वारा। गतवति—चत्ने जाने पर। प्रयाणम्—प्रस्थान। अन्गस्मिन्—दूसरा। अहनि—दिन में। आहतायाम् बजाने पर। प्रयाणभेर्याम्—प्रस्थान का बिगुल। अभ्यघात्—कहा। अतिपुण्यम्—बहुत पुण्य देने वाला। अच्छोद • आख्यम् —अच्छोद नामक श्रूयते सुना जाता है। तीरमाजि—किनारे पर स्थित। सिद्धायतने—मन्दिर में। भवानीपतिम् शिव जी को। व्रजायः—जाते हैं। अयासीत् चला गया। अतिरम्यतया बहुत सुन्दर होने के कारण। दत्तदृष्टिः (दत्ता दृष्टि येन सः बहुव्रीहि) दृष्टि डालते हुए। सञ्चरम्—घूमता हुआ। शीतलाभ्यन्तरशिलातलम भीतर रखे शीतल शिला तल वाले। अतिचिरान्तरितदर्शनम्—बहुत दिनों के पश्चात् देखे हुए। सुहृदम् - मित्र। विस्मृतनिमेषेण - पलक न झपकने वाली। अन्तरात्मा मन में। स्मरन्+इव—स्मरण सा करता हुआ। तूष्णीम्—चुपचाप। तथ्यौ - ठहरा रहा।

अर्थ--इस प्रकार पूछे जाने पर उन्होंने बताया--'महाराज ? जो कुछ हुआ सुनिये। सेना की रक्षा करने वाले लोग मेरे पीछे पीछे वैशम्पायन के साथ आना ऐसा आदेश देकर आपके चले आने पर सेना के पड़ाव ने प्रस्थान नहीं किया। दूसरे दिन द्रस्थान का बिगुल बजने पर प्रातःकाल ही वंशम्पायन ने हमें कहा—'पुराणों में अच्छोद नामक तालाब बहुत पुण्य देने वाला कहा गया है। इसलिये इसमें स्नान करक तथा इसी के तट पर स्थित

मंदिर में भगवान शिव को प्रणाम करके चलेंगे । 'ऐसा कह कर वह पैदल ही अच्छोद सरोववर के तट गये । उसके बहुत रमणीय होने के कारण चारों ओर दृष्टि डालकर घूमते हुए उन्होंने बींच में रखे शीतल शिलातल वाले लता मण्डप को देखा । वहुत दिनों के पश्चात् मिले हुए मित्र के समान ही अपलक नेत्रों से देखते हुए धरती पर बैट कर मन में कुछ स्मरण करते हुए चुपचाप नीचे मुख करके बैठ गये ।

तत्रावस्थिम् ··· प्रतिपालयन आस्ते इति ।

शब्दर्थ—अवस्थितम् —स्थित । जातचिन्ताः (जाता: चिन्ता येषाम ते बहुव्रीहि) चिन्तित । उभिष्ठ—उठिये । निवर्तय—समाप्त कीजिये । प्रयाणाभिमुखः—प्रस्थान के लिए तैयार । प्रतिपालयत्—प्रतीक्षा करता हुआ ।

अर्थ—इस प्रकार बैठे हुए उनको लेकर चिन्तित हम लोगों ने कहा—आप इस स्थान की सुन्दरता को देख चुके है । इसलिए उठिये और स्थानबांध कर लीजिए । सम्पूर्ण सेना का पड़ाव प्रस्थान के लिए तैयार है आपकी प्रतीक्षा कर रहा है ।

पृष्ठ ६१—स तु एवम्········ आदाय इति ।

शब्दार्थ—अश्रुत+अस्मदीय+आलाप—हमारी बात चीत न सुनता हुआ । विलोकितवान—देखा । अनुरुध्यमानः—आग्रह किया जाता हुआ । गन्तव्यम्—जाना चाहिए । आदाय—लेकर ।

अर्थ—हमारे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी जैसे हमारी बातचीत सुना न हो उसने कोई उत्तर नहीं दिया । केवल उसी लतामण्डप को अपलक आंखों से देखता रहा । हमारी द्वारा बारबार चलने का आग्रह करने पर निर्णय करने में कटोर सा होकर हम लोगों से कहा—'मैं इन स्थान से नहीं जाऊगा । आप सेना को लेकर जाइये ।'

इत्युक्तावन्तम् च तम् ······ मे प्रभुत्वम् ।

शब्दार्थ—आशंक्य—शका करके । प्रसिबोध्य—समझाकर । अभिहितम्—कहा । एतावत्+अपि—इतना भी । वेद्मि—जानता हूं । यत्—जो, विगतम्—नष्ट हो गया । प्रभुत्वम्—शक्ति ।

अर्थ—ऐसा कहै हुए उसे अचानक कोई वैराग्य का कारण हो गया ऐसी

आशंका करके उसे बार बार विनयपूर्वक आने के लिये समझाकर तथा उस प्रकार के असम्बन्ध कार्य से दुखी होकर हमने उसे कठोर वचन कहे । उसने कहा—क्या मैं इतना भी नहीं जानता जो आप लोग मुझे जाने के लिये समझाते हैं मैं तो चन्द्रापीड के बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता हूं । फिर भी मैं क्या करूं । इस समय मेरी सम्पूर्ण प्रभुता नष्ट हो गयी है ।

स्मरदिवकिमपि ·· ····· ररायतः वयम् इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—स्मरत्+इव—स्मरण करते हुए के समान । न+अन्यत्र—दूसरी जगह नहीं । प्रवर्तते—चलता है । निगालतौ+इव—बेड़ी पड़े हुए से । पदम+अपि—एक पग भी । दातुन रखने के लिये । उत्सहेते—उत्साहित होते हैं । अलंनिर्वन्धेन आग्रह मत करो लतागहसेपु घनी लताओं में । सरस्तीरेषु—सरोवर के किनारे । अन्विष्यन्—खोजता हुआ, वभ्राम—घूमा । तत्प्रतीवोधन प्रत्याशया—उसको समझाने की आशा से । दिनत्रयम्—तीन दिन तक । किम्+एतत+इति—क्यों यह ऐसा । विस्मिनान्तरात्मानः (विस्मितः अन्तरात्मा—येषां ते वहुव्रीहि समास)—विस्मित आत्मा वाले । निष्प्रत्याशाः—निराश । सुकृतशम्वख सविधानम्—अच्छी व्यवस्था करके । तत्परिकरम्—उसके सेवकों को । स्थापयित्वा—रखकर । परायताः—वापिस लौट जाये ।

अर्थ—कुछ स्मरण सा करता हुआ मेरा मन कहीं अन्यत्र नहीं चलता है वेड़ी पड़े पैर के समान मैं एक कदम भी चलने का साहस नहीं चलता है वेड़ी पड़े पैर के समान मैं एक कदम भी चलने का साहस नहीं कर सकता हूं इसलिए आग्रह मत करो आप लोग जायें । ऐसा कहकर उन पेड़ों के नीचे घनी लताओं में तथा सरोवर के किनारे किसी खोयी वस्तु को खोजता हुआ घूमने लगा । हम भी उसको समझाने की आशा से तीन दिन तक वहां ठहर कर यह क्या हो गया इस बात का विचार करके विस्मित हृदय वाले तथा निराश हम लोग उसके नियमित सेवक को वहां रख कर लौट आय ।

पृष्ठ ६२—चन्द्रापीडस्तु स्वानेऽपि ······निर्गात् नगर्याः ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अनूत्प्रेक्षणीम् (न उत्प्रेक्षनीयम्)—विचार न आये हुये । उद्वेग विस्मयाभ्याम् (उद्वेगश्च विस्मयश्च ताभ्याम् द्वन्द्व समास) —उद्वेग तथा विस्मय के साथ । ईदृग्य—ऐसे । बहुधा—अनेक प्रकार से

प्रकारान्तरेण —दूसरे प्रकार से। उत्पादयता—उत्पन्न करने वाला । कादम्बरी समीपगमनोपाय चिन्तापर्याकुलमतेः (कादम्बर्याः समीपं गमयस्य उपाये चिन्ता तेन पर्याकुला मतिः यस्य शः तस्य बहुव्रीहि समास) —कादम्बरी के समीप जाने के उपाय की चिन्ता से व्याकुल बुद्धि वाला। उपकृतम एव उपकार ही किया वैशम्पायन वियोग दुखिम् (वैशम्पायन वियोग दुखम् षष्ठी तत्पुरुष समास —वैशम्पायन के वियोग का दुख । परिणामसुखम् (परिणामे सुखम् सप्तमी तत्पुरुष समास) परिणाम में सुखद मन्यमान—मानता हुआ। पराप-तितवान —लौट आया । कृच्छ्रेण—कठिनाई से ढौकतम्+अति—खींचा हुआ होने पर। कृतातमर्पणाम्—भागने वाला । रमेण+एव—वेग से ही। निरगात्—निकल गया।

अर्थ—चन्द्रापीड स्वप्न में भी न सोचने योग्य वैशम्पायन के समाचार को सुनकर उसका मन एक साथ व्याकुलता तथा विस्मय से पूर्ण हो गया। इस वैराग्य का क्या कारण हो सकता है इस बात का अनेक प्रकार से विचार करके 'कादम्बरी के समीप जाने के लिए व्याकुल मन वाले का वैशम्पायन के समाचार जाने का अवसर देखर उपकार ही किया है' ऐसा निश्चय करके उस समय वैशम्पायन के वियोग जनित दुख को औषधि के समान परिणाम में सुखद मानता हुआ उज्जयिनी से चल पडा। वहां बड़ी कठिनाई से माता-पिता द्वारा मुक्त होकर शुकनाश और मनोरमा को प्रणाम करके आगे खींचा हुआ सा प्रस्थान करके जाने का उत्साह न दिखाने वाले इन्द्रायुद्ध पर सवार होकर बड़ी तेजी से नगरी से निकल गया।

पृष्ठ ६२ – निर्गत्य च ······ ·· जलदकालः।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—निर्गत्य —निकल कर । उत्ताम्यता—दुखी । किमपि कुछ । चिन्तयन् सोचता हुआ। अवहत्—घोड़े पर सवार होकर था। वहन:—चलते हुये। दवीयस्तया—लम्बी होने के कारण। अध्वनः—मार्ग के। अर्धपथ आये रास्ते में ही । आशुगमनविघ्नकारी (विघ्न करोति इति विघ्नकारी आशुगमने विघ्नकारी सप्तमी तत्पुरुष) शीघ्र गमन में विघ्न करने वाले। जलदकाल—वर्षा का समय।

अर्थ—निकलकर पीड़ित हृदय से कुछ कुछ सोचता हुआ दिन रात चलता

रहा। इस प्रकार चलते रहने पर मार्ग के लम्बा होने के कारण आधे रास्ते में ही शीघ्र पहुंचने में विघ्न उत्पन्न करने वाला वर्षाकाल आ गया।

पृष्ठ ६२—तादृशेऽपि········पजगाम् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—तादृशे—वैसे, अकृतपरिलम्बः—विलम्ब न करते हुए। धाराहतिविकूणितेक्षणः (धाराया हतिभिः विकूणितः अक्ष यस्य सः बहुव्रीहि समास) वर्षा की बौछार से जिसकी आंख बन्द हो गई हो। अपचीयमानवलजवोत्साहेन (अपचीयमानः वल च जवश्च उत्साहश्च यस्य तेन बहुव्रीहि समास)—जिसका बल, वेग तथा उत्साह कम हो रहा है। वाजिसैन्येन—घुड़सवार सेना से। आसाद—पहुंचा। भ्रामन्—घूमते हुये। क्वचिदपि—नहीं भी। अवस्थानचिन्हम्—निवास का चिन्ह। उपलक्षितवान्—देखा। अभिज्ञा—परिचिता। विचिन्त्य सोचकर। बभ्राम् घूमा। उपजगाम्—समीप गया। विचिन्वन्—खोजता हुआ।

अर्थ—वैसे वर्षा में क्षण भर भी विलम्ब न करने वाला वर्षा की तेज धारा से बन्द आंखों वाला चन्द्रापाड घटती हुए वल तेजी तथा उत्साह वाली घुड़सवार सेना के साथ उसी अच्छोद सरोवर पर पहुंचा। वहां घोड़े पर सवार होकर ही चारों ओर घूमा। जब घूमते हुए कहीं कुछ वैशम्पायन के निवास का चिन्ह नहीं मिला तब वह यह सोचकर कि शायद महाश्वेता इस समाचार को जानती होगी उसके आश्रम में आ गया।

पृष्ठ ६३—प्रविश्य च १पश्यम।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—धवलशिलातले—सफेद शिला तल अधोमुखीम्—नीचे मुख वाली। विधृतशरीरम् (विधृत शरीर यस्यां ताम् बहुव्रीहि समास) शरीर धारण किए हुये। प्रत्यगादीत्—उत्तर दिया विदीर्णमानसा (विदीर्णं मानसं यस्या सा बहुव्रीहि समास)—विदीर्ण मन वाली। काष्ठरतपश्चरणाय—कठोर तप के लिए। तुल्याकृतिम (तुल्या आकृति यस्यतम् बहुव्रीहि समास)—समान आकृति वाले।

अर्थ—प्रवेश करके गुफा के द्वार पर ही स्वच्छ शिला पर नीचे मुख करके बैठी हुई तथा तरलिका द्वारा शरीर पकड़ी हुई महाश्वेता को

देखा। देख कर तरलिका से पूछा कि यह क्या मामला है। तब महाश्वेता ने ही उत्तर दिया—हे महाभाग ! सुनिये, केयूरक के द्वारा आपके जाने का समाचार सुन कर दुखी मन वाली तथा अत्यधिक वैराग्य युक्त होकर मैं फिर कठोर तपस्या के लिये जैसे ही यहां आ गई वैसे ही मैंने आपके समान आकृति वाले एक ब्राह्मण युवक को देखा।

सः तु याम ······· उपनीयते इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उपसृत्य—समीप आकर। अदृष्टपूर्व—पहले न देखा हुआ। अत्यभिजानत् + इव—पहचान हुआ सा। अलोक्य—देख कर। वरतनु—सुन्दर शरीर वाली। जगति—ससार में। वयसः—आयु का। सदृशम्—समान। आचरति—व्यवहार करता है। विसदृश अनुष्ठाने—असमान कार्य में, अनुचित कार्य में। मालतीमाला + इव—कण्ठप्रग्रंकयोग्य—केवल गले में प्रेम पूवक लगाने योग्य। तपःकरणक्लेशन—तपस्या के कष्ट से। ग्लानिम—दुर्बलता को। उपनीयते—पहुंचाया जाता है।

अर्थ—उसने मेरे समीप आकर पहले न देखा होने पर भी पहचानते हुए के समान बहुत देर तक देखकर कहा—'हे सुन्दरी ! संसार में सभी मनुष्य आयु के अनुसार आचरण करते हैं। तुम प्रतिकूल आचरण क्यों करती हो। जो गले में प्रेम पूर्वक धारण करने योग्य इस शरीर को इस अनुचित तपस्या से नष्ट करती हो।

पृष्ठ ६३—अहंतुमम् ············ अनुबन्धम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—वन्दतम्—बोलते हुए की। अपृष्टवा—न पूछ कर। अन्यतः—दूसरी जगह। अनलोकयतः—देखते हुए। वदतः—बोलते हुये। उपलक्षितः—देखा। निवार्यताम् हटाओ। निवारितः + अपि + आगमिष्यति—रोकने पर भी आयेगा। अभद्रकम्—अहित। निर्वायमाणः—रोका जाता हुआ। अत्याक्षीत्—छोड़ा। अनुबन्धनम्—हठ।

अर्थ—मैं उस बोलते हुए से कुछ भी न पूछ कर दूसरी ओर चली गई और तरलिका को बुलाकर कहा—',हे तरलिका ! यह जो ब्राह्मण की आकृति वाला युवक है इसके देखने और बोलने में कोई दूसरा ही अभिप्राय मुझे दिखाई देता है। इसलिये इसको रोको जिससे यह फिर यहां न आये। यदि

रहा। इस प्रकार चलते रहने पर मार्ग के लम्बा होने के कारण आधे रास्ते में ही शीघ्र पहुंचने में विघ्न उत्पन्न करने वाला वर्षाकाल आ गया।

पृष्ठ ९२—तादृशेऽपि········पजगाम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—तादृशे—वैसे, अकृतपरिलम्बः—विलम्ब न करते हुए। धाराहृतिविकूणितेक्षणः (धाराया हृतिभिः विकूणितः अक्ष यस्य सः बहुव्रीहि समास) वर्षा की बौछार से जिसकी आंख बन्द हो गई हो। अपचीयमानवलजवोत्साहेन (अपचीयमानः वल च जवश्च उत्साहश्च यस्य तेन बहुव्रीहि समास)—जिसका वल, वेग तथा उत्साह कम हो रहा है। वाजिसैन्येन—घुड़सवार सेना से। आसाद—पहुंचा। भ्रामन्—घूमते हुये। क्वचिदपि—नहीं भी। अवस्थानचिन्हम्—निवास का चिन्ह। उपलक्षितवान्—देखा। अभिज्ञा—परिचिता। विचिन्त्य सोचकर। बभ्राम् घूमा। उपजगाम्—समीप गया। विचिन्वन्—खोजता हुआ।

अर्थ—वैसे वर्षा में क्षण भर भी विलम्ब न करने वाला वर्षा की तेज धारा से बन्द आंखों वाला चन्द्रापाड घटती हुए वल तेजी तथा उत्साह वाली घुड़सवार सेना के साथ उसी अच्छोद सरोवर पर पहुंचा। वहां घोड़े पर सवार होकर ही चारों ओर घूमा। जब घूमते हुए कहीं कुछ वैशम्पायन के निवास का चिन्ह नहीं मिला तव वह यह सोचकर कि शायद महाश्वेता इस समाचार को जानती होगी उसके आश्रम में आ गया।

पृष्ठ ९३—प्रविश्य च १पश्यम।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—घवलशिलातले—सफेद शिला तल अधोमुखीभ्—नीचे मुख वाली। विधृतशरीरम् (विधृत शरीर यस्यां ता बहुव्रीहि समास) शरीर धारण किए हुये। प्रत्यगादीत्—उत्तर दिया विदीर्णमानसा (विनीर्णं मानसं यस्या सा बहुव्रीहि समास)—विदीर्ण म वाली। काष्ठरतपश्चरणाय—कठोर तप के लिए। तुल्याकृतिम (तुल्या आकृ यस्यतम् बहुव्रीहि समास)—समान आकृति वाले।

अर्थ—प्रवेश करके गुफा के द्वार पर ही स्वच्छ शिला पर नीचे मु

करके बैठी हुई तथा तरलिका द्वारा शरीर पकड़ी हुई महाश्वेता

देखा। देख कर तरलिका से पूछा कि यह क्या मामला है। तब महाश्वेता ने ही उत्तर दिया—हे महाभाग ! सुनिये, केयूरक के द्वारा आपके जाने का समाचार सुन कर दुखी मन वाली तथा अत्यधिक वैराग्य युक्त होकर मैं फिर कठोर तपस्या के लिये जैसे ही यहां आ गई वैसे ही मैंने आपके समान आकृति वाले एक ब्राह्मण युवक को देखा।

सः तु याम ······· उपनीयते इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उपसृत्य—समीप आकर। अदृष्टपूर्वं—पहले न देखा हुआ। प्रत्यभिजानत्+इव—पहचान हुआ सा। अलोक्य—देख कर। वरतनु—सुन्दर शरीर वाली। जगति—ससार में। वयस:—आयु का। सदृशम्—समान। आचरति—व्यवहार करता है। विसदृश अनुष्ठाने—असमान कार्य में, अनुचित कार्य में। मालतीमाला+इव—कण्ठप्रग्रंकयोग्य—केवल गले में प्रेम पूवक लगाने योग्य। तय:करणक्लेशन—तपस्या के कष्ट से। ग्लानिम—दुर्बलता को। उपनीयते—पहुंचाया जाता है।

अर्थ—उसने मेरे समीप आकर पहले न देखा होने पर भी पहचानते हुए के समान बहुत देर तक देखकर कहा—'हे सुन्दरी ! संसार में सभी मनुष्य आयु के अनुसार आचरण करते हैं। तुम प्रतिकूल आचरण क्यों करती हो। जो गले में प्रेम पूर्वक धारण करने योग्य इस शरीर को इस अनुचित तपस्या से नष्ट करती हो।

पृष्ठ ६३—अहंतुमम् ············अनुबन्धम्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—वन्दतम्—बोलते हुए की। अपृष्टवा—न पूछ कर। अन्यत:—दूसरी जगह। अनलोकयत:—देखते हुए। वदत:—बोलते हुये। उपलक्षित:—देखा। निवार्यताम् हटाओ। निवारित:+अपि+आगमिष्यति—रोकने पर भी आयेगा। अभद्रकम्—अहित। निर्वायमाण:—रोका जाता हुआ। अत्याक्षीत—छोड़ा। अनुबन्धनम्—हठ।

अर्थ—मैं उस बोलते हुए से कुछ भी न पूछ कर दूसरी ओर चली गई और तरलिका को बुलाकर कहा—'हे तरलिका ! यह जो ब्राह्मण की आकृति वाला युवक है इसके देखने और बोलने में कोई दूसरा ही अभिप्राय मुझ दिखाई देता है। इसलिये इसको रोको जिससे यह फिर यहां न आये। यदि

रोकने पर भी आयेगा तो अहित होगा।" किन्तु उसने मना करने पर भी हठ नहीं छोड़ा।

पृष्ठ ६४—अतीतेषु केषुचित ....इति श्रुतवती।

शब्दार्थ—अतीतेषु—बीतने पर। केषुचित—कुछ। गाढ़ायाम—गहरी। यामिन्याम्—रात्रि में। हन्तुम—मारने के लिये। उद्यतः—तैयार। कुसुम-सायक—कामदेव, फूलों के बाण वाला। आत्म प्रदानेन—अपने को देकर। क्रोधावेगरूक्षाक्षरम् (क्रोधस्य आवेगेन रूक्षं यस्य तम् बहुव्रीहि समास)—क्रोध के आवेश में कठोर अक्षर वाला। उत्तमांगे—सिर पर। अवशीर्णा—फट गई अथवा नष्ट हो गई। चन्द्राभिमुखी—चन्द्रमा की ओर मुख करके। पुमान—पुरुष। अलीककामी—झूठा कामी। अनिरूपितस्थानास्थानवादी—स्थान अस्थान को बिना देखे बोलने वाला। प्रलपन—बकवास करता हुआ। शुकजातौ—तोते की जाति में। वचसः+अस्य+अनन्तरम् एव—इस वचन के बाद ही क्षितौ—धरती पर। कृताक्रन्दान् (कृतः आक्रन्दः येन सः तस्मात् बहुव्रीहि समास) क्रन्दन करने वाले। परिजनात्—सेवक से। श्रुतवती—सुना।

अर्थ—कुछ दिन बीतने पर एक बार गहरी रात्रि में मेरे समीप आकर बोला—'हे चन्द्रमुखी! कामदेव मेरा नाश करने के लिए तत्पर है। इसलिये शरण में आया हूं। अपने को मुझे प्रदान करके मेरी रक्षा कीजिये। मैं इस बात को सुनकर क्रोध के कारण कठोरतापूर्ण कहा—ओह पापी! ऐसा बोलते हुए तेरे सिर पर बज्र क्यों नहीं गिर पड़ा अथवा तेरी जीभ नष्ट क्यों नहीं हो गइ।" ऐसा कह कर चन्द्रमा की ओर मुख करके "हे भगवान लोक-पाल! यदि मैंने स्वामी पुण्डरीक के दर्शन के समय मन में किसी दूसरे पुरुष के विषय में न सोचा हो तो यह झूठा कामी स्थान अस्थान का, विचार न करके बोलने वाला तोते के समान बकवास करने वाला तोते की योनी में पड़ जाये" ऐसा कहा। वह मेरे ऐसा कहते ही जड़ से कटे हुए पेड़ के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसके पश्चात् विलाप करते हुए उसके सेवकों से यह सुना कि वह आपका ही मित्र है।

पृष्ठ ६४—चन्द्रापीडस्तु........आत्मकुशु।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—स्वभाव—सरयम। (स्वभावेन सरमम् तृतीला तत्पुरुष समास)—स्वभाव से कोमल। अस्फुटत—फट गया। उत्सृज्य छोड़ कर। प्रीतन्नचन्द्रापीड शरीग (प्रतिपन्नं चन्द्रापीडस्य शरीरं यया सा बहुव्रीहि समास) चन्द्रापीड के शरीर को स्वीकार करने वाला। चन्द्राकृते (चन्द्र इव आकृति यस्य तत्सम्बोधने बहुव्रीहि समास)—हे चन्द्रमा के समान आकृति वाले। क्व इदानीम् —अब कहां। गम्यत—जाते हैं। इति+आर्तनादमं—इस प्रकार दुख भरी आवाज। सुमोच —छोड़ा। दुष्टतापसि—दुष्ट तपस्विनी। कुलम्+उत्सदितम्—कुछ को नष्ट किया। प्रस्थित.+असि—चले हो। करूणम्—दयनीय। आचुक्रुशुः—चिल्लाने लगे।

अर्थ—उसे सुनकर स्वभाव से कोमल चन्द्रापीड का हृदय फट गया। तब तरलिका महाश्वेता के शरीर को छोड़ कर बड़े वेग से चन्द्रापीड़! हे कादम्बरी के प्रिय! आप कहां जाते हैं। इस प्रकार दुख के कारण चिल्लाने लगी। उसके सेवक बोले हे पापी दुष्ट तपस्विनी! तूने यह क्या किया। तूने तारापीड के कुल का नाश कर दिया। प्रजा को अनाथ बना दिया। हे देव चन्द्रापीड! हम सबको छोड़कर अकेले कहां जाते हो। इस प्रकार बड़े दुख के साथ विलाप करने लगे।

पृष्ठ ६५—अत्रान्तरे·········अकेन घृनवती।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—व्यजीकृत्य—बहाना बनाकर। ताक्ष्णोन्मुक्त-जीवनम् (तत्क्षण उन्मुक्त जीवितम् येन तम् बहुव्रीहि समास)—उसी समय जीवन त्यागने वाले। अवोमुखी—नीचे मुख किये हुए। उपयान्ती—जाती हुई। अधार्यंत्—पकड़ी गई। प्रत्याशा—जीवन की आशा। हताशाया: (हता: आशा: यस्या सा)—नष्ट हुई आशा वाली। आमत्रये—निमन्त्रण देती हूं। जन्मान्तर समागमाय जन्मान्तरे समागमाय सप्तमी तत्पुरुष)—दूसरे जन्म में समागम के लिये। विभावसौ—अग्नि में। निर्वापयाभि—अर्पण करती हूं। अकेन—गोद में। धुतवती—धारण कर लिया।

अर्थ—इसी बीच पत्रलेखा द्वारा चन्द्रापीड़ के आगमन का समाचार देने पर कादम्बरी महाश्वेता के दर्शन का बहाना करके पत्रलेखा के हाथ को पकड़े

हुए वह मदलेखा के साथ वहीं आ गई। वहां उसी समय जीवन त्यागते हुए कन्द्रापीड को देखकर "हाय हाय यह क्या हुआ" ऐसा कर नींचे की ओर मुख करके पृथ्वी पर गिरती हुई मदलेखा द्वारा पकड़ी गई। वहुत देर के बाद मुख करके पृथ्वी पर गिरती हुई मदलेघा द्वारा पकड़ी गई। वहुत देर के वाद होश में आई कादम्बरी ने महाश्वेता के गले से लग कर बोली—'हे प्यार सखी ! तुझे तो कोई आशा है किन्तु मुझ मन्दभागिनी को वह भी नहीं है। इसलिए मैं प्रिय सखी को दूसरे जन्म में मिलने के लिये आमन्त्रित करतीं हूं। मैं स्वामी के गले लगाकर अपने को अग्नि में जलाती हूं। ऐसा कहते ही चन्द्रापीड के पैरों को हाथों से उठा कर गोद में रख लिया।

पृष्ठ ६५—अथ—तत्कारस्पर्शेन आसमागमन प्राप्ते इति।

शब्दार्थं तथा व्याकरण—तत्करस्पर्शेन—उसके हाथ के स्पर्श से। उच्छ-वसंतः—सांस लेते हुये। चन्द्रधवलम् (चन्द्रवत् धवलम्—कर्मधारय समास)—चन्द्रमा के समान सफेद। उज्जगाम्—निकली। अश्रूयत्—सुनाई पड़ी। समाश्वासपिधव्या—आश्वासन, दिलाने योग्य। क्षरन्ती+इव—टपकती हुई सी। अशरीरिणी—अव्यक्त। मत्+लोके—मेरे लोक में। आप्यायमानम—आप्लावित। अवनाशि—अमर। भूयः—फिर। त्वत्+समाममाय—तुम्हारे समागम के लिये। अपरम्—दूसरा। स्वत.—स्वयं। अमुना—इससे। मत्तेजोमयम्—मेरे तेज से युक्त। कृतशरीरन्तर सङ्क्रान्ते—दूसरे शरीर में प्रवेश करने वाला। योगिन इव—योगी के समान। भवत्योः—आप दोनों के। प्रत्ययार्थन् विश्वास के लिये। आशापक्षयात्—शाप नष्ट होने तक। आस्ताम—रहे। आसमागम प्राप्ते—समागम की प्राप्ति तक।

अर्थ—तब उसके हाथ के स्पर्श से सांस लेते हुए के समान चन्द्रापीड के शरीर से तुरन्त अव्यक्त रूप वाली चन्द्र ज्योति निकल कर ऊपर चली गई। इसके पश्चात् आकाश से अमृत वर्षा के समय आकाशवाणी सुनाई पड़ी—"पुत्री महाश्वेता ! तुम फिर भी मेरे द्वारा ही आश्वासन दो जाती हो। तुम्हारे पुण्डरीक का शरीर मेरे लोक में मेरे तेज से सिंचित ही अविनाशी होकर फिर तुम्हारे समागम के लिए रखा है। यह दूसरा मेरे तेज से युक्त स्वयं ही अविनाशी विशेष रूप से इस कादम्बरी के हाथ के स्पर्श से सिंचित

ोड के शरीर की जिसकी आत्मा योगी के समान दूसरे में प्रवेश कर चुकी
आप दोनों के विश्वास के लिए शाप की समाप्ति तक प्रयत्न पूवक
म होने तक रक्षा करनी चाहिये ।

पृष्ठ —पत्रलेखा मुहूर्तमिव ········वमासे ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—ज्योतिषः—ज्योति के । लब्धसंज्ञा (लब्धा संज्ञा
ना बहुव्रीहि समास) होश में आई हुई । आविष्टा—खींची हुई ।
दुकहस्तात् (परिवर्धकस्य हस्तात् षष्ठी तत्पुरुष)—सईस के हाथ से ।
ोदसरसि—अच्छोद नामक सरोवर में । प्रक्षिपत्—डाल दिया । निमज्जन
ानन्तम + एवं—डूबने के समय क बाद ही । सरसः + सलिलात्—तालाब
ल से । उद्वहन् धारण करता हुआ । उद्विग्नाकृति (उद्विग्ना आकृतिः
स बहुव्रीहि समास)—व्याकुल आकृति वाला । उदतिष्ठम्—प्रकट हुआ ।
ोकयन्तीम —देखती हुई । बभाषे—बोला ।

अर्थ—पत्रलेखा मुहूर्त भर अचेत होती हुई उस ज्योति के स्पर्श से फिर
ा को प्राप्त करके तथा उठकर शैतान के वशीभूत हुई सी बड़ी तेजी के
दौड़कर साईस के हाथ से इन्द्रधनुष को छीनकर उसी के साथ अपने को
ोद नामक सरोवर में डाल दिया । उन दोनों के पानी में डूबने के तुरन्त
उस सरोवर के जल से सिर पर जटाओं को धारण किया हुआ एक मुनि
र घबराई हुई आकृति वाला अचानक निकला । उठकर दूर से ही देखती
महाश्वेता के समीप पहुंच कर बोला ।

पृष्ठ ६६—गन्धर्वराज पुत्रि !······सतापातः इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—जन्मान्तरात्—दूसरे जन्म से । प्रत्यभिज्ञाते—
ाना जाता है । शोकानन्दमध्यवर्तिनी—शोक और आनन्द के बीच में
। ससंभ्रमम्—घबराहट के साथ । अपुण्यवती—पापिन । प्रत्यभिजानामि
पहचानता हूँ । नीतः—ले जाया गया । उपजातम्—हुआ । कालेन—समय
वार्ता + अपि—समाचार भी । देवेन विना—स्वामी से बिना । समायातः
आये हो ।

अर्थ—हे गन्धर्वराज पुत्री ! क्या दूसरे जन्म से आये हुए इस व्यक्ति को

पहचानती हो अथवा नहीं ? वह ऐसा पूछने पर शोक तथा आनन्द के मध्य स्थित बड़ी तेजी से उठकर प्रणाम करती हुई बोली हे भगवन् कपिंजल ! मैं ऐसी पापिन नहीं हूँ जो आपको भी न पहचानूँ । तो बताओ कौन उसे उठाकर ले गया था ? अथवा तुम्हारा क्या हुआ था जो इतने समय तक कोई समाचार भी नहीं भेजा । तुम मेरे स्वामी पुण्डरीक के विना अकेले क्यों आ गये हो ।

पृष्ठ ६७—स तु प्रत्यवादीत्······निरपराधः संशप्त ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—कृतार्तप्रलापम (कृतः आर्तं प्रलापः यया साताम् बहुव्रीहि समास) दुख के साथ रोती हुई । अनुबध्नन्—पीछा करता हुआ । उदपतम्—ऊपर चला गया । अतिक्रम्य—पार करके : महोदयाख्यायाम्—महोदया नाम का । इन्दुकान्तमये—चन्द्रकान्त मणि के बने हुये । पर्यंके—पलंग पर । जानीहि—जाने । कामापराधात्—कामवासना के अपराध से । उत्सृजता—त्यागते हुये । संशप्त—शाप दे दिया गया ।

अर्थ—उससे उत्तर दिया—'हे गन्धर्वराज पुत्री ! सुनिये, दुख से चिल्लाती हुई आपको छोड़ कर उस पुरुष का पीछा करता हुआ बड़े वेग से ऊपर चला गया । वह मुझे उत्तर दिये विना ही तारागणों को पार कर चन्द्रलोक में चला गया । वहां महोदया नाम की सभा में चन्द्रकान्त मणि के बने बड़े पलंग पर उस पुण्डरीक का शरीर रखकर मुझसे बोला—'हे कपिंजल! तुम मुझे चन्द्रमा समझो । तुम्हारे मित्र ने कामदेव के अपराध के कारण जीवन त्यागते हुये मुझ निरपराध को शाप दिया था ।

पृष्ठ ६७ दुरात्मन् ··· अस्मै प्रायच्छम ।

शब्दार्थ इन्दुहतक—नीच चन्द्रमा । करैः—किरणों से । संताप्य—तपाकर । वियोजित—अलग किया गया हूँ । जन्मनि जन्मनि एव—जन्म जन्म में । असंप्राप्त समागमसुख (असंप्राप्तः समागम सुख येन सः बहुव्रीहि समास) जिसने समागम का सुख प्राप्त नहीं किया । अनुभूय—अनुभव करके अगणितात्म दोषेण (अगणितः आत्म दोषः येन तेन बहुव्रीहि समास) अपना दोष न देखने वाला । निरागाः—निरपराध । शप्तः+अस्मि—शाप दिया गया हूँ । मत् तुल्य—मेरे सामने । प्रतिशापम्—उल्टा शाप, शाप के बदले में

शाप । प्रायच्छत् दे दिया ।

अर्थ—'हे दुष्ट चन्द्रमा ! जिस प्रकार मैं तुम्हारे द्वारा किरणों से तप कर मारा गया हूँ उसी प्रकार तुम भी इस भारतवर्ष में जन्म जन्म में अनुराग से भरकर भी समागम का सुख न प्राप्त करके तीव्र हार्दिक पीड़ा को भोगकर जीवन त्याग करोगे । मैंने यह सोचकर कि इसने अपने दोष का विचार न करके मुझ निरपराध को शाप दिया है, क्रुद्ध होकर उसको बदले में शाप दिया कि तुम भी मेरे समान सुखी और दुखी होओगे ।

पृष्ठ ६७—अपगतामर्षः······ चरितार्थो भवति ।

शब्दार्थ—अपगतामर्ष (अपगतः अमंषः यस्य स बहुव्रीहि समास) जिसका क्रोध दूर हो गया हो । विमृशन्—विचार करता हुआ । महाश्वेता व्यतिकरम् —महाश्वेता के सम्बन्ध से । अधिगतवान अस्मि—जान गया हूं । तन्मयूख-संभवात्—मेरे किरणों से उत्पन्न । लब्धजन्मनि—जन्म पाने वाली । गौर्याम् —गौरी से । भर्ता—स्वामी । वृतः—वरण किया । स्वय कृतात+एज अपने किये हुये ही । वारद्वयम्—दो बार । वीप्सा—दो बार कहना । चरि-तार्थी—सफल ।

अर्थ—क्रोध शान्त होने पर विचार करते हुए महाश्वेता से इसका सम्बन्ध समझा गया । 'पुत्री महाश्वेता मेरी किरणों से उत्पन्न होने वाले अप्सरा के कुल में जन्म प्राप्त करने वाली गौरी से उत्पन्न हुई । उसने इसको अपना पति स्वीकार किया है । इसको अपने किये हुए अपराध के कारण मेरे साथ दो बार मनुष्य लोक में अवश्य उत्पन्न होना चाहिये अन्यथा जन्म जन्म में यह द्विरुक्ति कैसे सफल होगी ।

पृष्ठ ६८—तत् यावदयम्·········· व्यसर्जयत् ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अपैति मुक्त होता है । भूत—होवे । उत्क्षिप्य —उठाकर । समानीतम्—ले आया हूं । समाश्वासिता—धीरज दिला दी गई । अधुना—अब । एनम्—इसको । श्वेतकेतवे—पुण्डरीक के पिता श्वेतकेतु को । महाप्रभाव—बड़े प्रभाव वाले । कदाचित्—शायद । प्रतिक्रियाम–उपाय कांचित—कोई । व्यसर्जत्—भेज दिया ।

अर्थ—इसलिये जब तक यह शाप का दोष दूर होता है तब तक इसके

शरीर का नाश न हो ऐसा विचार करके मैं इसे उठा कर यहां ले आया और दुखी महाश्वेता को सान्त्वना दे दी है। अब तुम जाकर यह समाच श्वेतकेतु को बता दो। बड़े प्रभावशाली वह मुनि शायद कोई उपाय करें ऐसा कहकर मुझे भेज दिया।

पृष्ठ ६८—अहेतु बिना............अवतर इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—शोकः वेगाव:—शोक के आदेश से अन्ध गीर्वाण वर्त्मनि—स्वर्ग के मार्ग में। प्रधावन्—दौड़ता हुआ अतिक्रोधि—बड़े क्रोधी। वैमानिकम्—विमान पर आरूढ़ देवता को। अलंघयम् उल्लंघन किया। दहन इव—जलता हुआ सा। यम्+एवम्—जो इस प्रका अति विस्तीर्णो—बहुत चौड़े। तुरङ्गेण इव—घोड़े के समान। उल्लंघित उल्लघन किया।

अर्थ—मैंने मित्र के बिना शोकावेग से अन्धा होकर आकाश माग में दौ हुए अत्यन्त क्रोधी विमान पर आरूढ़ देवता का अतिक्रमण किया। उन्हे क्रोध से जलते हुए के समान मझे देखकर कहा—'दुष्ट! इस अत्तन्त विस आकाश मार्ग में तुमने घोड़े के समान मेरा उल्लघन किया इसलिये घोड़ा कर मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण कर।

पृष्ठ ६८—अहंतु.........भविष्यसि इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—कृतांजलि—हाथ जोड़े हुये। अवदम्—बोल वयस्यशोकान्धेन (वयस्यस्य य: शोक: तेन अन्त: य तेन बहुव्रीहि समास)-मि के शोक से अन्धा: न+अवज्ञया—अपमान से नहीं। प्रसीद—प्रसन्न होइये यत+मया+उक्तम्—जो मैंने कहा। भवितुम अर्हति—हो सकता है कियन्तम+मपि—कितना भी। वाहनताम्—सवारी। उपयास्यमि—प्रा हो आगे। अवसाने—अन्त में। विगतशाप+शाप से मुक्त।

अर्थ—मैंने हाथ जोड़कर उनमें कहा—'हे स्वामी मित्र के कोश अन्धा होने के कारण मैंने अतिक्रमण किया न कि अपमान के कारण इसलिये प्रसन्न होइये और शाप को लौटा लीजिये। उन्होंने फिर मुझे कहा—जो मैंने कह दिया वह रुक नहीं सकता। फिर भी तेरे लिये इतना करता हूं कि तू जितने समय तक जिसकी सवारी बनेगा उसकी मृत्यु पर तू भी स्नान करे

शाप से मुक्त हो जायेगा।

पृष्ठ ६८—एवमुक्तस्तु·········काल: यायात्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उक्त:—कहा हुआ, यद्येवम् (यदि + एवम्)—यदि ऐसा है। चन्द्रमसा—चन्द्रमा के साथ, उत्पतव्यम्—उत्पन्न होना चाहिये, एतावन्तम्—इतना, प्रसादम्—कृपा, दिव्येनचक्षुषा—दिव्य दृष्टि से, अवलोक्य—देखकर, तुरंगमत्वे—घोड़ा होने पर भी, प्रियवयस्येन—प्रिय मित्र के साथ, अवियोगेन–साथ रहते हुए, काल—समय, यायात्—व्यतीत हो।

अर्थ—ऐसा कहे जाने पर मैं बोला—'हे स्वामी! यदि ऐसा है तो निवेदन करता हूं। वह मेरा प्रिय मित्र पुण्डरीक भी चन्द्रमा के साथ शाप के कारण पृथ्वी पर जन्म लेगा। इसलिये आप अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा देखकर इतनी कृपा कीजिये कि घोड़ा होने पर भी मेरा समय प्रिय मित्र के साथ रह कर ही व्यतीत हो।

पृष्ठ ६९—स तु एवम्·········उपयास्यसि इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—ध्यात्वा—ध्यान करके। अवादीत्—बोला। अपत्यहेतो:—सन्तान के लिए। उपस्यत:—तपस्या करते हुए। नाम्न:—नाम के। राज:—राजा का। तनयत्वम्—पुत्रत्व को। उपगन्तव्यम्—प्राप्त होना चाहिए। तन्मंत्रिण: (तस्य मंत्रिण: षष्ठी तत्पुरुष)—उसके मन्त्री का। चन्द्रात्मन: (चन्द्र: आत्मनि यस्य तस्य बहुव्रीहि समास)—चन्द्रमा जिसका आत्मा में है अथवा चन्द्रमा के रूप वाला। वाहनताम्—सवारी। उपायास्यास—प्राप्त होओगे।

अर्थ—इस प्रकार कहे हुए उन्होंने घड़ी भर ध्यान करके फिर मुझसे बोले—उज्जैन में सन्तान के लिए तारापीड़ तपस्या करते हुए तारापीड़ नामक राजा के घर में चन्द्रमा पुत्र के रूप उत्पन्न होगा। तुम्हारा मित्र पुण्डरीक भी उसके मन्त्री शुकनाश के पुत्र के रूप में उत्पन्न होगा। तुम भी उस चन्द्रमा की आत्मा वाले राजकुमार की सवारी बनोगे।

पृष्ठ ६९—अहंतु·········पुण्डरीकस्यावतार: इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—वचनानन्तरम्—कहने के तुरन्त बाद। अध:—

नीचे। महोदधौ (महान च असौ उदधि तस्मिन् कर्मधारत समास)—महासागर में। न्यपतत्—गिर गया। तूरगीभूय+एव—घोड़ा बनकर ही। उदतिष्ठ—निकला। संज्ञा—नाम। व्यपगता—दूर हुई। अस्य+एव+अर्थस्य कृते—इसके लिए ही। किन्नरमिनाथुनानुमारी—किन्नर मिथुन का अनुसरण करने वाला। भूमियएताम्—इतनी दूर तक। आनीत्—लाया गया। चन्द्रमसः—चन्द्रमा के। प्राक्तनानुराग संस्कारात् पुराने प्रेम के प्रभाव से। अभिलषन्—इच्छा करता हुआ। अज्ञानत्या—न जानते हुये। निदग्धः—जला दिया।

अर्थ—मैं उनके वचन के तुरन्त पश्चात नीचे स्थित महासागर में गिर पड़ा और उससे घोड़ा बनकर निकला। घोड़ा बनने पर भी मेरा नाम नष्ट नहीं हुआ। मैं भगवान चन्द्रमा के अवतार चन्द्रापीड को इसी प्रयोजन के लिए किन्नर के जोडे के पीछे पीछे यहां लाया था। पूर्व जन्म के प्रेम के कारण तुम्हारी अभिलाषा करते हुए जिस पुरुष को तुमने अनजाने में शाप की अग्नि से जला दिया वह मेरे मित्र पुण्डरीक का अवतार ही था।

पृष्ठ ६९—ऐतत् श्रुत्वा············अनुबध्यताम् इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—एतत्—यह। श्रुत्वा—सुनकर। जन्मान्तरे+अपि—दूसरे जन्म में भी। अविस्मृतमदनुराग (स विस्मृतः मम अनुराग—यें सः तत्सम्बोधने बहुव्रीहि समास)—मेरे अनुराग को न भूलने वाला। लोकान्तरगतस्य—दूसरे लोक में चले गये। विनाशाय+ऊपजाता—विनाश के लिए उत्पन्न हुई। इति+उन्मुक्त+आर्तनादम्—इस प्रकार से आर्तनाद करने वाली। कः तव+अत्र—इसमें तुम्हारा क्या। उपनतम्—हुआ। भवतयोः—आप दोनों का। भारती—वृतान्त। श्रुता+एव—सुना हो।

अर्थ—इसको सुनकर 'हा देव पुण्डरीक! हा दूसरे जन्म में भी मेरे प्रेम को न भूलने वाले! दूसरे लोक चले गये होने पर भी मैं आपके विनाश के लिए राक्षसी हुई।' इस प्रकार दुख के साथ विलाप करती हुई महाश्वेता को कपिंजल ने फिर कहा—'हे गन्धर्वराज पुत्री! इसमें तुम्हारा क्या दोष है? शाप के दोष से आप दोनों को जिस प्रकार दुख हुआ है वह मैंने बता ही दिया। चन्द्रापीड को कथा भी आपने सुन ली है। आप अपने स्वीकृत तप को कीजिये।

पृष्ठ ७०—अथ कादम्बरी............उदपतत।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अप्राक्षीत्—पूछा । सरसि—सरोवर में। कृत ...था। अस्याः—उसका, पत्रलेखा का। संवृत्तम्—हुआ । इति+ ...—यह कहने की । प्रत्यवादीत—उत्तर दिया । सलिलपातानन्तरम् ... में गिरने के बाद । कश्चित अपि—कोई भी । ज्ञात:—जाना। ...—अब। वृतम्—समाचार। अवगमनाय—जानने के लिए। पादमूले— ... में। अभिदधान:—कहता हुआ। उदपतन्—उड़ गया।

अर्थ—इसके पश्चात् कादम्बरी ने कपिंजल से पूछा-हे भगवान ! पत्रलेखा ...के साथ इस सरोवर में जल प्रवेश किया था। उसका क्या हुआ ? ...ने की कृपा कीजिये। उसने उत्तर दिया—हे राजपुत्री ! जल में गिरने ...चात् मुझे कुछ भी बात मालूम नहीं है। इस समय चन्द्रापीड का जन्म ...हुआ है ? वैशम्पायन का जन्म कहां हुआ है ? उस पत्रलेखा का क्या ? इस बात को जानने के लिए भगवान श्वेतकेतु के चरणों में जाऊंगा। कहकर आकाश में चला गया।

पृष्ठ ७०—अथ कादम्बरी........उपभुक्तवती।

शब्दार्थ तथा व्याकरण–निर्विकारवदनाम् (निर्विकारवदनं यस्याः सा ताम् ...हि समास)—विकार रहित मुख वाले । कस्मिश्चित्–किसी। स्थाप- ...—रखकर । स्नानशुचि:—स्नान से पवित्र । भूत्वा—होकर। देवतो- ...—देवताओं के योग्य । अपचितिम् पूजा को । सम्पाद्य—करके । ...राहा—बिना भोजन किये हुए। अनयत्—व्यतीत किया । मेघोपरोधभी- (मेघाना उपरोधः तेन भीमाताम् तृतीय तत्पुरुष समास)—बादलों से होने के कारण भयंकर । क्षयाम्—रात्रि को । समुपविटा+एव—बैठी ही । क्षपितवती—व्यतीत कर दी अन्येद्यु:—दूसरे दिन । उपनीतानि— हुए। सह+एव–साथ ही। उपभुक्तवती–खाया।

अर्थ—इसके पश्चात् कादम्बरी ने उस विकार रहित मुख वाले चन्द्रापीड ...रीर को किसी शिलातल पर रखकर स्नान से पवित्र होकर तथा देवताओं ...जा करके बिना भोजन के किये ही दिन को व्यतीत किया । दूसरे दिन ...लेखा द्वारा लाये हुए फलों को उसके ही साथ खाया।

पृष्ठ ७१—अथ च मदलेखा······· अतिष्ठत ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—उपचरन्तीभिः—सेवा करती हुई, आशापक्षयात्—शाप के समाप्त होने तक, स्थातव्यम्—रखना चाहिए, अति+अदभुतम्—अत्यन्त आश्चर्यजनक, तातस्य—पिता के अम्बायाः माता के, निवेदय बताओ, एवम् विधाम्—इस दिशा को प्राप्त, अभिधाय—कहकर, व्यसर्जयत् भेज दिया, आगताय—हुई, सिद्धम्—सफल हो गया, अभिवांछितम्—अभिलाषा, सन्दिदष्टम्—सन्देह किया है, शापावसाने (शापस्य अवसाने षष्ठी तत्पुरुष समास)—शाप के अन्त में, जमात्रा—जमाई के साथ, आनन्दवाष्पनिर्भरम् (आनन्दस्य वाष्पः निर्भरम्)—आनन्द के आंसू से भरे हुए । आनदम्—मुख को आवेर्दादिते—बनाने पर, विवृतेन—शान्त ।

अर्थ—इसके पश्चात् मदलेखा से बोली—हे प्रिय सखी ! महाराज के शरीर की सेवा करते हुए हम लोगों को शाप समाप्त होने तक यहीं ठहना चाहिए । इसलिये तुम यह अद्भुत समाचार पिता जी और माता जी को वताओ । तुम ऐसा प्रयत्न करना कि वे मुझे ऐसी दशा में देखने के लिये न आयें । ऐसा कहकर उसे भेज दिया । जाकर और लौटकर मदलेखा ने कहा कि हे सखी ! तुम्हारी कामना पूरी हुई । माता और पिता ने यह संदेश दिया है कि शाप के समाप्त होने पर दामाद के साथ ही तुम्हारे आनन्द के आंसुओं से भरे हुए मुख को देखेंगे ।' ऐसा निवेदन करने पर शान्त हृदय से वह वहां रहने लगी ।

अत्रान्तरे चन्द्रापीड ···········शापवार्ता श्रूयन्ते ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—चिरयति—विलम्ब करता है । उत्ताम्यदा—व्याकुल । वार्ताहरः—समाचार लाने वाला । प्रहिताः—भेजा । वृत्तान्तम्—समाचार । अधिगम्य—जानकर । प्रतिनिवृत्य—लौट कर । यथादृष्टम्—जैसा देखा था । यथाश्रुतम—जैसा सुना था । निवेदयामासुः—निवेदन कर दिया । आविष्ट—भरे हुए । सभाव्यते—सम्भव होता है । आगमप्रमाणात्—शास्त्रों के प्रमाण से । अभ्युपगतम् जाना है । विषप्रसुप्तस्य (वियेण प्रसुप्तस्य तृतीया (तत्पुरुष)—विष से सोये हुए । उत्थापनम—उठाना । अयसकान्तस्य—

क का। अयम् + समाकर्षणम् — लोहे को खींचना। शापवार्ता (शापस्य षष्ठी तत्पुरुष समास) — शाप की बात। श्रूयन्ते — सुनी जाती है।

अर्थ—इसी बीच चन्द्रापीड आने में विलम्ब करते हैं ऐसा सोचकर व्याकुल तारापीड ने समाचार लाने वालों को भेजा। उन्होंने कादम्बरी के मुख से पूर्ण वृत्तान्त जानकर और लौटकर राजा तारापीड को जैसा देखा और सुना सब कुछ निवेदन किया। सुनकर विस्मय कुतूहल तथा शोक से भरे हुए तारापीड को शुकनास ने कहा — महाराज! इस विचित्र संसार में क्या २ नहीं होता है। मुद्राबन्ध अथवा ध्यान के द्वारा विष खाकर सोये हुए को जगाना। चुम्बक के द्वारा लोहे को खींचना। वैदिक अथवा अवैदिक मन्त्रों से कार्यों में सिद्ध। शस्त्रों में पुराण, रामायण, महाभारत आदि में अनेक प्रकार की शाप की बातें सुनी जाती है।

पृष्ठ ७१ ७२ तद्यथा नहुषस्य……नैवासम्भाविनी।

शब्दार्थ तथा व्याकरण — तत् + यथा — जैसा कि। अगस्त्यशापात् (अगस्त्य शापात् षष्ठी तत्पुरुष) अगस्त्य ऋषि के शाप से। अजगरता—अजगर बनना। मानुषादत्वम् (मानुषाणाम् अदत्वम् षष्ठी तत्पुरुष)—मनुष्यों को खाना। ...पन। ययातेः—ययाति का। असुरगुरुशापात् (असुराणाम् गुरु तस्य शापात् षष्ठी तत्पुरुष) — राक्षसों के गुरू शुक्राचार्य के शाप से। तारुण्ये — युवावस्था में। जरसा — बुढ़ापे से। त्रिशंकोः—त्रिशंकु का। श्रूयते—सुना जाता है। महाभिषः—इक्ष्वाकु वंश के एक राजा का नाम। अन्ये—दूसरे। आदिदेव—सर्व प्रथम देवता। अज—विष्णु। जमदग्ने—जमदग्नि ऋषि के। आत्मजताम्—पुत्र भाव को। उपगतः—प्राप्त हुए। चतुर्धाः—चार प्रकार से। विभज्य—विभाजित करके। तथा + एव — उसी प्रकार। न + एव + असम्भावनी—असम्भव नहीं है।

अर्थ—जैसे कि राजर्षि नहुष का अगस्त्य ऋषी के शाप से अजगर के रूप को धारण करना, वशिष्ठ के पुत्र के शाप से सौदास का मनुष्य का भक्षण करना ययाति का शुक्राचार्य के शाप से युवावस्था में ही बुढ़ापे से शरीर का जीर्ण होना त्रिशंकु का पिता के शाप से चांडाल बन जाना इत्यादि। सुना जाता है कि गोलस्थान में रहने वाला महाभिष भूमि पर शान्तनु के रूप में उत्पन्न हुए

तथा गङ्गा में आठ वसुओं की उत्पत्ति हुई। दूसरे उदाहरण तो रहने दीजि
यह आदिदेव और भगवान विष्णु ही जमदग्नि ऋषि के पुत्र रूप को प्राप्त हु
और फिर अपने चार भागों में विभाजित करके राजर्षि दशरथ के पुत्र रूप
और उसी प्रकार मथुरा में वसुदेव के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। इसलिए मनुष्य
में देवताओं की उत्पत्ति असम्भव नहीं है।

अपि च गर्भारम्भ ·····अकारयत्।

शब्दार्थ—वदने— मुख में। विशन- प्रवेश करते हुए। दृष्ट देखा है
पुण्डरीकस्य - कमल का। समुपजातम् हुआ। विनष्टयोः—नष्ट हुए। जीवि
प्रतिलम्भः—जीवन का लौटाया जाना। इति+अत्र+अपि इस विषय
भी। आवेदितम्—बताया। चन्द्रमसि—चन्द्रमा में। विद्यते—है। मनाक्+अ
— तनिक भी। उक्तवति -कहने पर। सद्यः तुरन्त। गमगनस विधानम्-
जाने की तैयारी। अकारयत्—कराई।

अर्थ --और फिर गर्भ का आरम्भ होने पर आपने देवी विलासवती के मु
में प्रवेश करते हुए चन्द्रमा को देखा था। इसी प्रकार मुझे भी स्वप्न में कम
का दर्शन हुआ था। नष्ट हुए उन दोनों का जीवन कैसे लौटेगा इस विषय
भी अमृत ही कारण बताया गया है और वह चन्द्रमा में है। इसलिए
विषय में तनिक भी शोक नहीं करना चाहिए। शुकनास के ऐसा कहने पर श
सहित ही राजा ने तुरन्त जाने की तैयारी कराई।

अथ उत्ताम्यता··· तत्रैव अतिष्ठत।

शब्दार्थ तथा व्याकरण उत्ताम्यता—व्याकुल। सततम् —लगातार
अविच्छिन्नैः— बिना रुके हुए। प्रमाणकैः—प्रस्थान से। आससाद—पहुँचा
सहसा+एव -अचानक ही। चन्द्रापीडगुरुजनागमनम् (चन्द्रापीडस्य गुरुः त
आगमनम् षष्ठी तत्पुरुष,—चन्द्रापीड के गुरुजन का आगमन। आकर्ण्य—सु
कर। धावित्वा - दौड कर। ह्रिया लज्जावश। गुहाभ्यन्तरम् गुफा
अन्दर। चित्ररथतनया (चित्ररथस्यतनया षष्ठी तत्पुरुष)—चित्ररथ की पुत्री
लज्जावनम्रमुखी–लज्जा से नम्रमुखी। परवती+एव—पराधीनसी हो। यथ
क्रमम् यथायोग्य। अकार्यत्—कराया। अनतिक्रमणीय (न अतिक्रमणीय
नञ समास)—प्रतिक्रमण न करने योग्य। नियति भाग्य। सन्निहितानि-

स्थित । परित्यज्य—छोड कर । समम्—साथ । कुर्वन—करता हुआ ।

अर्थ—इसके पश्चात् व्याकुल हृदय से राजा लगातार बिना रुके जाते हुए श्वेता के आश्रम में पहुँचे । अचानक चन्द्रापीड के गुरुजन का आगमन सुन महाश्वेता लज्जावश दौड कर गुफा में घुस गई । चित्ररथ की पुत्री काद-री ने लज्जा से नम्रमुखी तथा पराधीन सी होकर मदलेखा के द्वारा यथो-त गुरुजनों की वन्दना की । राजा यह सोचकर कि भाग्य में जो लिखा ता है । उसे कोई नहीं टाल सकता है समीप स्थित सभी सुखों को त्याग कर स्वियों के समान कर्म करते हुए परिवार सहित तथा देवी विलासवती और कनास के साथ वहीं ठहर गये ।

पृष्ठ ७३ एवम कथयित्वा······पतित: इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण स्मितं कृत्वा—मुस्करा कर । हारीत प्रमुखान् हारीत: प्रमुख: येषु तान् बहुव्रीहि)—जिसमें हारीत प्रमुख था । अतादीत्—बोला । दृष्टम्—देखा । चित्ताक्षेपप्रामर्थ्यम्—चित्त को आकर्षित करने की शक्ति । यत् जो । कथयितुम् प्रवृत्त: अस्मि—जो कहने लगा था । अतिक्रांत: —चला गया । कामोपहतचेता (कामेन उपहत चेत: यस्य स: बहुव्रीहि)—काम वासना से भरे चित्त वाला । दिव्यलोकत—स्वर्ग से । परिभ्रष्ट: गिर कर । मर्त्यलोके—संसार में । शुकनाससूनु: शुकनास का पुत्र । अविनयेन—दुष्टता से । शुकजाती—शुक जाति में ।

अर्थ—ऐसा कहकर भगवान जावालि ने मुस्कराते हुए हारीत प्रमुख सभी शिष्यों से कहा देखा कथारस में कितना चित्त को आकर्षित करने की शक्ति है ? जो कहने लगा था उसे छोड़कर कथा के रस के कारण बहुत दूर निकल गया हूँ । जो वह कामवासना से भरा हुआ चित्त वाला अपनी दुष्टता से स्वर्ग से पतित होकर मनुष्य लोक में वैशम्पायन नाम का शुकनास का पुत्र हुआ वही फिर अपने किये हुए अविनय के कारण इस शुक जाति में पडा है ।

एवं वदति एवं··········उदतिष्ठत ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—वदति+एव-बोलते ही । सुप्तप्रबुद्धस्य+इव नींद से जागे हुये के समान । पूर्वजन्मोपार्जिता–पूर्व जन्म में प्राप्त की हुई । जिह्वाग्रे–जीभ के ऊपर । मनुष्यस्य+इव–मनुष्य के समान । विस्पष्टा–स्पष्ट ।

भारती–वाणी। ऋते–अतिरिक्त। सर्वम्+अन्तत्–और सब कुछ। महाश्वे तानुरागादिकम्–महाश्वेता से प्रेम आदि। उपगतम्–प्राप्त हो गया। ज्ञान हो गया। प्रभातप्राया–लगभग प्रभात। गोष्ठीम्–सभा को। भक्त्वा–भंग करके उदतिष्ठत्–उठ गए।

अर्थ–भगवान जावालि के ऐसा कहते ही सोकर जागे हुए मनुष्य के समा पूर्व जन्म में प्राप्त की हुई सारी विद्यायें जीभ पर आ गई और मनुष्य समान स्पष्ट वाणी प्राप्त हो गई। मनुष्य शरीर के अतिरिक्त दूसरी सभ महाश्वेता से प्रेम सम्बन्धी सभी बातें मुझे स्मरण हो गई। इसके पश्चा भगवान् जाबालि ने यह कहकर 'ओहो, रात लगभग समाप्त हो गई है' सभ भंग करके उठ खड़े हुए।

पृष्ठ ७३-७४–उत्थिते जाबाली········प्रारब्धम्।

शब्दार्थ–उत्थिते–उठने पर। समस्ता–एक वृद्धि सन्धि। परिषद–सभा जगाम–गई। नीत्वा–ले जाकर। प्राभातिक–क्रिया–प्रातः काल धार्मिक क्रिय निर्दयी–निकल गया। कर द्वयेन–दोनों हाथों से। उत्क्षिप्त–उठा कर मन्युवेगेन–क्रोध के वेग से। भूयसा–बड़ा। अमीभिः–इनके द्वारा। अपि–क्या उक्तवान्–कहा। कुपित–क्रुद्ध। आख्यातवान्–कहा। अस्मत्–हमारा। चक्षुष –आंख से। दृष्टः–देख लिया। प्रतिक्रियायैः–प्रति क्रिया के लिए, शाप के दोष का निवारण करने के लिए। प्रारब्धम्–आरम्भ किया।

अर्थ–महर्षि जावालि के उठने पर वह सभा भी अपने २ स्थान को चली गई। हारीत भी मुझे लेकर अपने शय्या के समीप रख कर प्रातःकाल के नित्य कर्म के लिए चला गया। इसके पश्चात् मेरे पिता श्वेतकेतु के समीप से आकर हारीत द्वारा प्रवेश कराये जाने पर मुझे दोनों हाथों से उठाकर दुख के साथ रोने लगा। मैंने उससे कहा–हे मित्र कपिंजल! तुम धन्य हो जो बालक होने पर भी संसार के इन दोषों से मुक्त हो। बैठ कर तुम मुझे सारा समाचार बताओ कि पिता जी सकुशल हैं? मेरे समाचार को सुनकर उन्होंने क्या कहा? वे अप्रसन्न हुए अथवा नहीं? कपिंजल ने कहा—हे मित्र! वह कुशलपूर्वक है। उन्होंने पहले ही दिव्य दृष्टि से हमारा समाचार जान लिया

था। उन्होंने उसे जान कर उसके लिए उपाय भी आरम्भ कर दिया है।

समारब्धे एव कर्मणि······अदर्शनम् अगात्।

शब्दार्थ—तुरगभावात् – घोड़ापन से। अनपसर्पन्तम्–समीप न जाते हुए। स्वदोशकाम्—अपने दोष का भय। भवितव्यता—होनहार। सुहृत – मित्र। वेत्सि—जानते हो। न+अपि+असौ–न वही। आयुष्करम्—आयु देने वाला अधुना अब। समाप्तप्रायम् लगभग समाप्त। स्थीयताम् ठहरो। आहूय —बुलाकर। आज्ञपितवान्—आज्ञा दी है। प्राप्तः–पहुँच गया है। उपजातम् –हो गया है। सम्प्रति–इस समय। आशिषा–आशीर्वाद से। अनुगृह्य–अनुगृह करके। वक्तव्यः–कहना चाहिए। परिसमाप्यते–समाप्त होता है स्थातव्यम्– ठहरना चाहिये। क्व+अपि–कहीं। अदर्शनम् आगात्–अदृश्य हो गया।

अर्थ—कर्म आरम्भ करते ही घोड़ेपन से मुक्त होकर मैं उनके समीप गया था। जाकर भय के कारण समीप न जाते हुए मुझे बुलाकर आज्ञा दी—वत्स कपिंजल! अपने अपराध का भय छोड़ो। होनहार बलवान है। इस समय तुम्हारा मित्र तोते की योनि में पड़ गया है इसलिए उसके समीप जाकर भी तुम उसको नहीं जानोगे। वह भी तुम्हें नहीं जानेगा। मैंने पुत्र के लिए आयु प्रदान करने वाला कर्म आरम्भ कर दिया है। अब वह लगभग समाप्त होने वाला है। इसलिए यहीं ठहरो! आज प्रातः काल ही मुझे बुला कर उन्होंने आज्ञा दी। 'वत्स कपिंजल! तुम्हारा मित्र महामुनि जाबालि के आश्रम में पहुँच गया है। उसे जन्मांतर की बात स्मरण हो गई। इसलिये अब तुम उन से मिलने जाओ। मेरा आशीर्वाद देकर उसे कहना—'वत्स! जब तक यह कर्म समाप्त होता है तब तक इसी जाबालि के आश्रम में ठहरो। ऐसा कहकर कपिंजल क्षण भर ठहर कर मित्र जाता हूं ऐसा कहकर आकाश में जाकर अदृश्य हो गया।

पृष्ठ ७५—गते च तस्मिन्······अमुचम।

शब्दार्थ तथा व्याकरण – उपचारैः–सेवा में। संवर्ध्यमानः–पाला जाता हुआ। संजातपक्ष (संजातौ पक्षौ यस्यः सः बहुव्रीहि समास)–जिसके पंख उत्पन्न हो गये हैं। गमनक्षमः—जाने में समर्थ। उत्पन्नोत्पतनसामर्थ्यः जिसको

उड़ने का सामर्थ्य हो सञ्जातः+अस्मि—हो गया हूं। परिज्ञानम्—ज्ञान। सा+एव+आस्ते—वहीं है। निश्चित्य—निश्चय करके एकदा—एक बार। प्रातर्विहार निर्गतः—प्रातः काल के लिये निकला हुआ। कुकुभम् दिशा को। अवहन्—उड़ा। अनभ्यस्त—गमनतया—उड़ने का अभ्यास न होने के कारण। स्तोकम्—थोड़ा। शिथलित पक्षति (शिथलितौपक्षती यस्य सः बहुव्रीहि समास) शिथिल पंख वाला। अमुचम्—छोड़ दिया।

अर्थ—उसके चले जाने पर हारीत द्वारा लाये हुये प्रतिदिन भोजनादि तथा सेवा से बढ़ता हुआ मैं पक्षी बला हो गया हूँ तथा उड़ने का सामर्थ्य हो गया हूँ। अब मैं आकाश में उड़ने में समर्थ हूं किन्तु चन्द्रापीड की उत्पत्ति का मुझे ज्ञान नहीं है। महाश्वेता तो वहीं है। अच्छा वहीं जाकर ठहरता हूँ। ऐसा निश्चय करके एक बार प्रातः काल भ्रमण के लिए निकला हुआ मैं उत्तर दिशा की ओर चला। उड़ने का अभ्यास न होने के कारण थोड़ी दूर जाकर पंख थक जाने के कारण मैंने अपने आपको किसी तालाब के किनारे उगे हुये पेड़ों के कुन्जों पर डाल दिया।

पृष्ठ ७५—ततश्च अध्वश्रम……प्रजपति इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अध्वश्रम सुलभ। निद्राम् रास्ते की थकान के कारण सुलभ नींद को। लब्धः प्रबोध (लब्धः प्रबोध येन सः बहुव्रीहि)—जागे हुये। बद्धम्—बन्धा हुआ। अग्रतः—आगे। कालपुरुषम्+इव—काल पुरुष जैसा। परुषम्—कठोर। अद्राक्षम्—देखा। निष्प्रत्याशः—निराश होकर। अपृच्छम्—पूछा। उक्तवान्—बोला। जात्या—जाति से। पक्कणाधिपति (पक्कणाना अधिपतिः षष्ठी तत्पुरुष)—चाण्डालों के स्वामी। इतः—यहां से। कृतावस्थानः (कृतः अवस्थानः येन सः बहुव्रीहि) निवास करता है। दुहिता—पुत्री। प्रथमे वयसि—बाल्यावस्था में। वर्तते—हैं। दुरात्मना—दुष्ट व्यक्ति द्वारा। बहवः—बहुत से। मादृशः—मुझ जैसे। समादिष्टाः—आदेश दिया। आसादितः+असि—प्राप्त किये गये हो। तत्पादमूलम—उसके समीप। प्रापयाम—पहुँचाता हूं। प्रभवति—समर्थ है।

अर्थ तब मार्ग की थकान के कारण मुझे अच्छी नींद आ गई बहुत देर

के बाद जागने पर मैंने अपने को बन्धा हुआ देखा और आगे कालपुरुष जैसे एक कठोर पुरुष को देखा। उसको देखकर अपने प्रति निराश होकर मैंने पूछा भाई तुम कौन हो तथा तुमने मुझे क्यों पाला है ? उसने मुझे कहा 'हे महात्मा मैं जाति से चाण्डाल हूं। मेरे स्वामी यहां से थोड़ी दूर पर रहते हैं। उनकी पुत्री युवावस्था में है किसी दुष्ट ने तुम्हारे विषय में बताया है। उसने कौतुहल के कारण तुम्हें पकड़ने के लिये मुझ जैसे बहुतों को आदेश दिया। आज तुम सौभाग्य से मेरे द्वारा पकड़े गये हो। मैं तुम्हें उसी के समीप पहुँचाता हूं वही तुम्हें बांध या छोड़ सकती है।

पृष्ठ ७६ अहं तत् ...दर्शितवान्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—चेतसि अकरवम्–मन में सोचा। मन्दपुण्यस्य (मन्दम् पुण्यम् यस्य तस्य: बहुव्रीहि समास –पुण्यहीन का। दारुणा: भयकर विपाक:–परिणाम। जगतत्रयनमस्यस्य–तीनों लोकों में नमस्कार करने योग्य, स्वहस्तसंवर्धितेन–अपने हाथ से पाला पोसा हुआ। भूत्वा–होकर। पक्कणम्–चण्डाल की बस्ती। प्रवेष्टम्–प्रवेश। स्थातव्यम्–निवास। क्रीडनकेन–खिलौना भवितव्यम्–होना जरन्मतङ्गाङ्गनाकरोपनीतं जरः चासौ मतग संबाय्य तेषा अङ्गनानां–करैः उपनीतं –बूढ़ी चण्डाल की स्त्रियों के हाथ से लाये हुए। कवलै–ग्रास से। पोषणीय:–पालन करना चाहिये। अति भयंकर सन्निवेशम्–बहुत भयंकर स्थान। प्रविश्य–प्रवेश करके। चण्डाल दारिकायै: (चांडालस्य दारिका तस्यै षष्ठी तत्पुरुष)–चांडाल की पुत्री को। दर्शितवान् दिखाया।

अर्थ मैंने उसे सुनकर मन में सोचा—ओह ! मुझ मन्द भाग्यशाली के कर्मों का यह भयंकर परिणाम है। जिससे मैं तीनों लोकों द्वारा प्रणाम प्रवेश करूंगा। चांडालों के साथ निवास करूंगा। चांडालों के बालकों का खिलौना बनूंगा। बूढ़ें भीलों की स्त्रियों के हाथों से लाये हुये भोजन से अपना पालन पोषण करूंगा इस प्रकार की तथा दूसरी बातों का विचार करके विलाप करते हुये मुझे उठाकर वह चांडाल सभी प्रकार के पापों का निवास स्थान बहुत भयंकर भीलों की नगरी में प्रवेश करके उन्होंने मुझे चांडाल पुत्री को दिखाया।

पृष्ठ ७६ सा तु······अङ्गीकृतवानस्मि ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण प्रहृष्टवदना–प्रसन्न मुख वाली। स्वकरयुगेन–अपने दोनों हाथों से। इति+अभिदधाना+एव–ऐसा कहती हुई। मनाक्–थोड़ा। उद्घाटित द्वारे (उद्घाटितं द्वार यस्य तस्मिन्)–जिसके द्वार बन्द हों। दारूपंजरे–लकड़ी के पिंजरे में। आक्षिप्य–डालकर। अर्गलित द्वार (अर्गलित: द्वार: यया सा बहुव्रीहि समास)–जिसने द्वार बन्द कर दिया है। निभृत–शान्त। तूष्णीम्+अस्थात्–चुप होकर ठहर गई। संरुद्ध–बन्धा हुआ। अनियतेन्द्रियस्य–इन्द्रियों के वंश। नियमयामि–नियन्त्रित करता हूँ। अकार्षम्–किया। सर्वः+इन्द्रियाणि+एव–सब इन्द्रियों को ही। स्वपाणिना+उपनीतेषु–अपने हाथ से लाये हुये। फलपानीयादिषु–फल जल आदि से। क्षुत्पिपासोपशमाय (क्षुत च पिपासा च तयोः उपशमाय षष्ठी तत्पुरुष समास) भूख प्यास की शान्ति के लिये। अशनक्रियाम्–भोजन की क्रिया। अङ्गीकृतवान्अस्मि–स्वीकार किया है।

अर्थ—प्रसन्न मुख वाली उसने अपने दोनों हाथों से मुझे लेकर बोली आह पुत्र ! प्राप्त कर लिये गये हो ऐसा कहती हुई थोड़ा सा द्वार खुले लकड़ी के पिंजड़े में मुझे डालकर द्वार बन्द कर दिया और यहीं शान्त होकर बैठो ऐसा कहकर चुप होकर बैठ गई। मैंने इस प्रकार पिंजड़े में बन्द होकर मन में सोचा 'ओह ! बहुत बड़े संकट में पड गया हूँ। यह सब इन्द्रियों को वश मे न रखने का दोष है इसलिए अब इन्द्रियों का नियन्त्रण करता हूँ। ऐसा सोचकर मैंने मौन ग्रहण कर लिया। इसके पश्चात् उसके अपने हाथ से लाये हुए फल जल आदि को मैंने अपनी भूख प्यास शान्त करने के लिए खाना स्वीकार किया।

पृष्ठ ७: एव अतिक्रामति······कुतूहल एवं इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अतिक्रामति–बीतने पर। यामिन्याम्–रात में। उन्मीलित लोचनः (उन्मीलिते लोचने येन सः बहुव्रीहि समास) जिसकी आखें खुली हों। अद्राक्षम्—देखा। कनकपंजरे—सोने के पिंजरे में। आत्मानम्—अपने को। दृष्टा+एव—देखा ही है। सकलम्—सम्पूर्ण।

पुर सदृशत्–स्वर्ग के समान । आलोक्य–देखकर । प्रष्टुकामम्–पूछने की
इच्छा वाले । आदाय–लेकर । झटिति–तुरन्त । का + इयम्–यह कौन है ।
नीत:–लाया गया हूं । अनपगत कुतूहल: (न अपगत: कुतूहल: यस्य स:
बहुव्रीहि समास) -जिसका कुतूहल दूर न हुआ हो ।

अर्थ इस प्रकार समय बीतने पर एक बार प्रात: काल मैंने आंख खुलने
पर अपने को इस सोने के पिंजड़े में देखा । इस चाण्डाल कन्या को महाराज
देखा ही है । उस सम्पूर्ण भीलों की नगरी को स्वर्ग के समान देख कर मैं यह
पूछने वाला था कि यह क्या है ? वह मुझे तुरन्त आपके चरणों में ले आई ।
यह कौन है ? इसने मुझे क्यों बांधा है ? इस विषय में मुझे भी आपके समान
ही कुतूहल है ।

पृष्ठ ७७ राजा तु तत्.........धारय ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—श्रुत्वा–सुनकर । समुपजाताभ्यधिक कुतूहल:
(समुपजात अधिक कुतूहल यस्य स: बहुव्रीहि समास)–जिसे अधिक कुतूहल
उत्पन्न हुआ हो । आह्वानाय–बुलाने के लिए । आदिदेश–आदेश दिया । न
चिरान् + एव–शीघ्र ही । पुरस्तात्–सामने । उर्ध्वस्थिता + एव–ऊपर खड़ी
हो । बभाषे–बोली । भुवन–भूषण (भुवनस्य भूषण: तत्सम्बोधनने षष्ठी
तत्पुरुष)–हे संसार के भूषण ! रोहिणी के पति । कादम्बरी लोचना नन्दकर
-कादम्बरी की आंखों को आनन्दित करने वाला । सर्व + त्वया + अस्य–सब
तुमने इसका । आत्मन: + च–और अपना दुरात्मन: दुष्ट की । प्रस्थितन्–गये
हुए । एनम्–इसको । आदिष्टा + अस्मि–आदेश दी गई हूं । तनय:–पुत्र । तिर्यग
जाते:–पशु पक्षियों की योनि से । अधस्तात–नीचे । धारय–पकड़े रहो ।

अर्थ–राजा ने उसे सुनकर अधिक कुतूहल पूर्ण होकर उसको बुलाने के
लिए प्रतिहारी को आदेश दिया । शीघ्र ही सामने उपस्थित होकर ऊपर स्थित
ही बोली । हे ससार की शोभा बढ़ाने वाले रोहिणी के स्वामी, कादम्बरी की
आंखों को आनन्दित करने वाले ! आपने अपना तथा इस दुष्ट का सम्पूर्ण
वृत्तान्त सुना ही है । मैं इस दुष्ट की माता हूं । पिता की आज्ञा का उलंघन
करके पत्नी के समीप जाते हुए इसको उन्होंने दिव्य दृष्टि से देख कर मुझे

आदेश दिया कि यह तुम्हारा पुत्र कहीं इस पक्षी योनि से भी नीची योनि में न गिर जाये। इसलिये जब तक यह कर्म समाप्त नहीं होता है तब तक इस संसार में ही बांध कर रखो।

पृष्ठ ७७ तदस्य विननाय ········उदपत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—विनयाय–पथ प्रदर्शन के लिए। विनिर्मितम्–बनाया। अधुना–अब। परिसमाप्तम्–समाप्त हो गया है। शापावसाने (शापस्य अवसाने षष्ठी तत्पुरुष –शाप के अन्त में। युवयोः–तुम दोनों का। समम्+एव–साथ ही। भवितव्यम्-होना चाहिए। मया+अयम्–मेरे द्वारा यह ख्यापिता–प्रदर्शित किया दिखाया। लोक सम्पर्क परिहाराय–संसार में सम्पर्क को दूर करने के लिए। अनुभवत्–अनुभव करो। द्वौ+अपि–दोनों ही। जन्म-जरादिदुखबहुले–जन्म तथा बुढ़ापा आदि दुखों से पूर्ण। तनु–शरीर। इष्टजन समागमसुखम्–प्रियजनों से मिलने का सुख। अभिदधाना+एव–कहते ही। उद्पतत्–उड़ गई।

अर्थ – इसको पथप्रदर्शन के लिए मैंने ऐसा किया। वह सम्पूर्ण कर्म अब समाप्त हो गया है। अब शाप समाप्त होने का समय है। शाप के समाप्त होने पर आप दोनों एक साथ ही सुखी होंगे। इसलिए मैं इसे आपके समीप लाई हूं। इस विषय में मैंने जो अपनी चांडाल जाति बताई है। वह केवल संसार के सम्पर्क को बचाने के लिए किया है। इसलिए अब आप दोनों एक साथ ही जन्म तथा बुढ़ापा आदि दुखों से परिपूर्ण इस शरीर को त्याग कर प्रियजन से मिलने का सुख अनुभव कीजिए। ऐसा कहते ही वह आकाश में चली गई।

पृष्ठ ७८ अथ राज्ञः·········वैशम्पायनस्य।

शब्दार्थ तथा व्याकरण –संस्मृतजन्मान्तरस्य (संस्मृत जन्मान्तरं येन तस्य बहुव्रीहि समास)–जन्मान्तर की बात स्मरण करने वाला। मकरकेतुः (मकरः केतौ वर्तते तस्य सः बहुव्रीहि समास)–कामदेव। पदंचकार–उपस्थित हुआ। अभिध्यायतः–ध्यान करते हुए। विमुक्त सर्वान्यक्रियस्य (विमुक्ताः सर्वा अन्य क्रियाः येन सः तस्य बहुव्रीहि समास)–सब कार्य छोड़े हुए। सद्यः–तुरन्त। काष्ठीभूतम्–काष्ठ का बना हुआ)–पराकोटिम्–अन्तिम दशा को। अधिरूढः–

न्त। ददाह–जला दिया। तुल्यावस्थस्य–तुल्य अवस्था वाले। महाश्वेताकुलता–महाश्वेता की व्याकुलता से। पुण्डरीकात्मन–पुण्डरीक की आत्मा वाला।

अर्थं इसके पश्चात् उसकी बात सुनकर दूसरे जन्म की बात स्मरण किए हुए राजा शुद्रक के प्राणों को हरण करने के लिए कामदेव ने प्रवेश किया। उसी कादम्बरी का ध्यान करते हुए सभी कार्य को छोड़कर काष्ठ बने हुए उसके शरीर को तुरन्त चरम सीमा को प्राप्त कामाग्नि ने जला दिया। इसी प्रकार महाश्वेता के लिए व्याकुल राजा के समान दशा वाले पुण्डरीक की आत्मा वाले वैशम्पायन को भी कामग्नि ने जला दिया।

पृष्ठ ७८ अस्मिन्नेव······· प्रत्यपद्यत।

शब्दार्थं तथा व्याकरण – दक्षिणानिलम् – दक्षिण की वायु। प्रवर्तयन्–चलता हुआ। मन्मथोल्लासकारी–कामदेव को आनन्दित करने वाला। पर्यवतत–घूमा। सुरभिमास:–बसन्त का महीना। पर्याकुलितहृदयां (पर्याकुलित हृदयं यस्याः सा बहुव्रीहि समास)–व्याकुल हृदय वाली। सायाह्ने–सांयकाल। स्नात्वा–स्नान करके। निर्वर्तितकामदेवपूजा (निर्वर्तित: कामदेवस्य पूजा यया सा बहुव्रीहि समास)–कामदेव की पूजा कर चुकने वाली। स्नापयित्वा+अम्भसा–जल में स्नान कराके। विलिप्य–लेप करके अलङ्कृत्य–सुशोभित करके। भावार्द्रया–भावों से आर्द्र दृशा–दृष्टि से। सुचिरम्–बहुत देर तक। आलोक्य–देखकर। कण्ठे जग्राह–गले को पकड़ लिया। जीवितम्–जीवन। प्रत्यपद्यत–प्राप्त कर लिया।

अर्थं इसी बीच कामदेव को आनन्दित करने वाला, दक्षिणी वायु को प्रवाहित करने वाला बसन्त का समय आ गया। इसके कारण व्याकुल हृदय वाली कादम्बरी ने सायंकाल स्नान करके कामदेव की पूजा समाप्त करके चन्द्रापीड़ के शरीर को सुगन्धित और शीतल जल में स्नान करवा कर चन्दन का लेप करके तथा फूलों से शृङ्गार करके प्रेम पूर्ण भावों से बहुत देर तक देख कर उसे गले लगा लिया। इस प्रकार कादम्बरी द्वारा गले लगाने से चन्द्रापीड के कण्ठ में फिर प्राण आ गये।

पृष्ठ ७८ सद्य एव·········शूद्रकाख्या तनुः ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सद्यः—तुरन्त । उच्छ्वासितम्—सांस लेने लगा
उन्मीलत—खुल गई । सद्यप्रतिबुद्धः+इव —तुरन्त सोकर जागे हुए के सम
प्रत्यापन्नसर्वांग चेष्ट (प्रतिपन्ना सर्वांगानां चेष्टा येन सः बहुव्रीहि समास)-
जिसके समीप अङ्गों में चेष्टा आ गई हो । दोर्भ्याम्—दोनों भुजाओं से
आबध्नन्—बांधता हुआ । भीरू—डरपोक । परित्यजताम्—छोड़ो । प्रत्युज्जीवि
+अस्मि—फिर से जीवित हो गया हूं । अमुना – इस । अमृतसंभवात्—अमृत
उत्पन्न । अप्सरसाम्—अपसराओं के । व्यपगतः—नष्ट हो गया । शूद्रकाख्य
शूद्रक नाम । तनु—शरीर ।

अर्थ—तुरन्त ही उसका हृदय धडकने लगा । आंखें खुल गई तथा सो
जागे हुए के समान उसके सम्पूर्ण अङ्गों में गतिशीलता उत्पन्न हो गई ।
चन्द्रापीड ने कादम्बरी को दोनों भुजाओं में बांधते हुए कहा—हे कायर !
को त्यागो तुम्हारे इसी आलिङ्गन से मैं फिर जीवित हो गया हूं । तुम अमृत
उत्पन्न अप्सराओं के कुल से उत्पन्न हुई हो । आज मेरा शाप नष्ट हो गया
मैंने अपना शूद्रक का शरीर भी त्याग दिया है ।

पृष्ठ ७९ अपि च·········भवता इति ।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—अपि च—और भी । मम+एव—मेरे स
ही । विगतशापः (विगतः शापः यस्य सः बहुव्रीहि समास)—शाप रहि
सम्वृद्धः—हो गया अभिदधति+एव—कहते ही । चन्द्रापीड शरीरान्तरि
वपुषि (चन्द्रापीडस्य शरीरे अन्तरितम् वपुः येन सः तस्मिन् बहुव्रीहि सम
—चन्द्रापीड के शरीर में अपना शरीर छिपाने वाला । चन्द्रमसि—चन्द्रमा
एकावलीम्—माला को । धारयन्—धारण करता हुआ । अवतरन्—उत
हुआ । कपिंजल करोवलम्बी—कपिंजल का हाथ पकड़े हुए । समुत्सृष्ट
शरीरः (समुत्सृष्ट शुकस्य शरीरं येन सः बहुव्रीहि समास)—तोते के श
को त्यागे हुए । प्रागजन्म सम्बन्धात्—पूर्व जन्म के सम्बन्ध से । जमाता+

—जमाई हो। जन्माहितेन —दूसरे जन्म में किए हुए। सौहृदेन — मित्रता के साथ। वर्तितव्यम् —व्यवहार करना चाहिए। भवता—आपका।

अर्थ —और तुम्हारी प्रिय सखी महाश्वेता का प्रियतम पुण्डरीक भी मेरे साथ मुक्त हो गया है। चन्द्रापीड के शरीर में अपना शरीर छिपाये हुए चन्द्रमा के इस प्रकार कहते हो उसी प्रकार एक लड़ी वाली माला को धारण किये हुए कपिंजल का हाथ पकड़े हुए तथा तोते का शरीर त्यागे हुए पुण्डरीक को आकाश से उतरते हुए देखा। चन्द्रापीड उसे गले से लगाकर बोला—मित्र पुण्डरीक! पूर्व जन्म के सम्बन्ध के कारण आप मेरे जमाई (दामाद) हो। इसलिए आप दूसरे जन्म में स्थापित किए हुए प्रेम भाव के साथ मेरे प्रति व्यवहार कीजिए।

पृष्ठ ७६—अथ मदलेखा.........अपतत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—धावमाना—दौड़ती हुई। निर्गत्य—निकल कर। मृत्युंजयव्यग्रस्य—मृत्युंजय मन्त्र के जप में लगे हुए। पतित्वा—गिर कर। दिष्ट्या—सौभाग्य से। वर्धसे—बढ़ते हैं। प्रत्यजीवित—फिर जीवित हो गया। इति + उच्चै + जगात् —इस प्रकार ऊंचे स्वर से बोला। हर्षपरवशः-हर्ष में डूबा हुआ।

अर्थ —इसके पश्चात् मदलेखा दौड़ती हुई निकल कर मृत्युंजय मन्त्र के जप करने में लीन तारापीड तथा विलासवती के चरणों में गिर कर महाराज की जय हो। राजकुमार वैशम्पायन के साथ फिर जीवित हो गये हैं इस प्रकार उच्च स्वर से बोली। राजा इस समाचार को सुनकर हर्षपूर्ण होकर विलासवती तथा शुकनास के साथ वहीं आ गये। चन्द्रापीड ने पिता को देखकर चरणों में झुक कर प्रणाम किया।

पृष्ठ ७२ सत्तु ....अपतत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—सत्वर + अपसृतः—शीघ्र हटे हुए, प्रणतम-चरणों में झुके हुए। उत्तमध—उत्तर। अभ्यधात्—कहा। संजातः—हुआ। लोकपाल (लोकस्य पालः षष्ठी तत्पुरुष)—लोक के पालक। मयि + अपि—मुझ में भी।

त्वयि+एव–तुम में ही। सङ्क्रामित:–सौंप दिया। उभयथा+अपि–दोनों प्रकार से ही। नमस्कार्य:–नमस्कार करने योग्य। प्रतीयम्–उलटा।

अर्थ—उस तारापीड ने तुरन्त पीछे हट कर इस प्रकार पैरों में गिरे हुए चन्द्रापीड को कहा—'पुत्र! यद्यपि मैं शाप के कारण तुम्हारा पिता बना फिर भी तुम्हीं संसार के मुख्य लोकपाल हो। मुझ में जो भी नमस्कार करने योग्य अंश हैं वह तुम्हारे में ही चला गया है। इसलिए तुम दोनों प्रकार से नमस्कार करने योग्य हो। ऐसा कह कर वहीं उसके चरणों में गिर पड़ा।

पृष्ठ ८० विलासवती तु·········अदर्शयत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण – कपोलयो:–गालों। ललाटे–मस्तक पर। चुम्बित्वा–चूम कर। आलिगिन–आलिगन किया। उन्मूक्त:–छोड़ा हुआ। उपसृत्य–समीप जाकर। कृतनमस्कार:–(कृत नमस्कार. येन स: बहुव्रीहि समास)–नमस्कार किये हुए। प्रणनाम–प्रणाम किया। आशी:+सहस्त्राभि:+वर्धित सैकड़ों आशीर्वाद से बढ़ा हुआ। यथानुक्रमम्–क्रम के अनुसार अदर्शयत्–दिखाया।

अर्थ –विलासवती ने बार बार उसके सिर पर फिर मस्तक पर और गालों पर चुम्बन करके छाती से लगा लिया। माता द्वारा आलिगन करके मुक्त किये हुए चन्द्रापीड ने समीप जाकर बार २ नमस्कार करते हुए शुकनास को प्रणाम किया। उसने सहस्त्रों आशीर्वादों को प्राप्त कर स्वयं समीप जाकर क्रमश: अपने माता पिता और शुकनास तथा मनोरमा को यह कहकर कि यह आपका वैशम्पायन है' पुण्डरीक को दिखाया।

पृष्ठ ८० तस्मिन्नेव च··· ·····प्रत्यग्रहीत।

शब्दार्थ तथा व्याकरण—प्रस्तावे–अवसर पर। सदिष्टम्–सन्देश दिया है संवर्धित:–पालन पोषण किया गया। आत्मज:–पुत्र। भवत्सु+एव–आप पर ही। अवगत्य–जानकर। अविनयेभ्य:–अशिष्टता से। निवारणीय:–रोकना चाहिए। पर:+अयम्–यह दूसरा है। न:–उपेक्षनाय:–उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। प्रत्यग्रहीत्–स्वीकार कर लिया।

अर्थ—उसी अवसर पर समीप जाकर कपिजल ने शुकनास को कहा—'आपको भगवान श्वेतकेतु ने इस प्रकार सन्देश दिया है मैंने इस पुण्डरीक का

केवल पालनपोषण किया है यह पुत्र आपका ही है इनका स्नेह भी आप लोगों पर ही लगा है। इसलिए ऐसा जानकर कि यह वैशम्पायन ही है इसे अनुचित कार्य से रोकियेगा। यह दूसरा है ऐसा समझ कर इसके प्रति उपेक्षा नहीं कीजियेगा। शुकनास ने ऐसा ही होगा' यह कहकर उस सन्देश को स्वीकार कर लिया।

पृष्ठ ८० अथ केयूरकेण........हस:।

शब्दार्थ तथा व्याकरण–विदितवृत्तान्तौ (विदित वृत्तान्त: याभ्यात् तौ बहुव्रीहि समास)–समाचार जानने वाले। समम्–साथ। आजग्मतु:–आ गये। सम्बन्धकोचितकथया सम्बन्ध की उचित कथा। प्रावर्तत–हुआ। उभयो:+अपि· दोनों का ही। निवार्तयत्–कर दिया। समग्रम–सम्पूर्ण। न्यवेदयत्–निवेदन किया। निजपदम्–अपना राज्य।

अर्थ–इसके पश्चात् केयूरक से समाचार जानकर चित्ररथ और हंस मदिरा और गौरी के साथ वहीं आ गये। आये हुए उन दोनों की तारापीड़ और शुकनास के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की सुन्दर बातचीत से वहां बड़ा उत्सव सा आरम्भ हो गया। इसके पश्चात् उन सब ने हेमकूट पर जाकर चन्द्रापीड कादम्बरी तथा वैशम्पायन महाश्वेता इन दोनों जोड़े का विधिपूर्वक विवाह संस्कार कर दिया। चित्ररथ ने चन्द्रापीड को महाश्वेता सहित अपना राज्य दे दिया।

पृष्ठ ८०-८१ कादम्बरी तु.........द्रक्ष्यसि इति।

शब्दार्थ तथा व्याकरण -हृदयवल्लभलाभे+अपि–प्राणप्रिय को पाने पर भी। विषण्णमुखी (विषण्ण मुख यस्या: सा बहुव्रीहि) दुखी मुख वाला। अप्राक्षीत्–पूछा। पुनरुज्जीविता:–फिर से जिवित हो गये. संघटिता:–मिल गये। वराकी–वेचारी, दृश्यते–दिखती है। विद्म:–जानते हैं। शप्तम्–शाप दिया हुआ। निर्वायमाना+अति—रोके जाने पर भी। परिचर्यायै–सेवा के लिए। द्रक्षसि–देखोगी।

अर्थ— कादम्बरी ने अपने प्राणप्रिय चन्द्रापीड को प्राप्त करके भी दुखी होकर चन्द्रापीड से पूछा–हे आर्य पुत्र ! हम सब मरे हुए फिर जीवित हो गए और परस्पर मिल भी गये लेकिन वह बेचारी पत्रलेखा 'हम लोगों के

बीच में दिखाई नहीं देती है।' हम नहीं जानते हैं कि उसका क्या हुआ ? उस ने उत्तर दिया वह रोहिणी मुझे शाप दिया हुआ सुनकर आप कैसे अकेले मनुष्य लोक में निवास के दुख को भोगेगें ऐसा कह कर रोकने पर भी उसने मेरे साथ मेरी सेवा के लिए मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण किया था। तुम उसको वहां देखोगी।

पृष्ठ ८१ एव च चन्द्रापीड........प्रत्यगच्छत्।

शब्दार्थ तथा व्याकरण दशरात्रम् -दस रात तक। परितुष्ट—सन्तुष्ट हो श्वसुराभ्याम्—सास सुसर द्वारा। आजगाम्—आकर। समारो पतराज्यभार: (समारोपित: राज्यभार: येन स: बहुव्रीहि समास)—राज्यभार सौंपे हुए। कदाचित्—कभी। अपरेपु + अपि—दूसरे भी। रम्यतरेपु—अधिक सुन्दर। अनुबभूव—अनुभव किया। परस्पर+अवियोगेन—परस्पर मिलकर। पराम्—कोटिम् —चरम सीमा को। प्रत्यगच्छत्—प्राप्त हुए।

अर्थ—इस प्रकार चन्द्रापीड वहां दस रात ठहर कर प्रसन्न हृदय वाले सास और ससुर द्वारा विदा होकर पिता के समीप आ गया। उन्होंने आकर पुण्डरीक पर राज्य भार सौंप कर कभी उज्जयिनी में, कभी हेमकूट पर कभी चन्द्रलोक में, कभी दूसरे अत्यधिक सुन्दर स्थानों में निवास करते हुए सुख भोग किया इस प्रकार चन्द्रापीड कादम्बरी तथा पुण्डरीक-महाश्वेता इन सब ने परस्पर मिलकर अत्यधिक आनन्द प्राप्त किया।

मुद्रक:— प्रभात प्रिंटिंग प्रेस, सहारनपुर